UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182904
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 80 Bh 57 M   Accession No. H 1589

Author भट्ट, भानाभाई

Title महाभारत के पात्र

This book should be returned on or before the date last marked below.

महाभारत के पात्र

[दूसरा भाग]

लेखक

आचार्य श्री नानाभाई भट्ट

सर्वोदय साहित्य मन्दिर

हुसैनीअलम रोड, हैदराबाद (दक्षिण)

प्रधान विक्रेता

हिंदी मंदिर, प्रयाग

हिंदी मंदिर के लिए
नवयुग साहित्य सदन, इन्दौर
द्वारा प्रकाशित

दूसरी बार १९४६
मूल्य
सवा रुपया

मुद्रक—
अमरचन्द्र, राजहंस प्रेस, दिल्ली

इसकी विशेषता

मनुष्य दैनिक जीवन में जितना देखा जाता है उससे कहीं अधिक प्रसंग-विशेष पर वह अधिक चमक के साथ देखा, परखा और पहचाना जा सकता है। दैनिक जीवन-क्रम में ऐसी एक रागिता होती है कि सूक्ष्म दृष्टि ही किसीको जल्दी पहचान पाती है। मगर जीवन की विशेष घटनायें और विशेष प्रसंग ऐसे होते हैं कि जो मनुष्य को बरबस खींचकर आँखों के सामने चमका देते हैं और राह पर चलनेवाला भी उसे अपनी आँखों में उतार लेता है। इसलिए चरित्र-चित्रण वर्णनात्मक की अपेक्षा घटनात्मक अधिक प्रभावकारी होता है।

महाभारत के पात्र का दूसरा भाग—भीम और अर्जुन—मैंने पढ़ा। चरित्र-चित्रण का यह आम नमूना है। श्री नानाभाई की समर्थ लेखनी ने भीमसेन और अर्जुन को चलता-बोलता हमारे सामने खड़ा कर दिया है। इनका जीवन पढ़ते हुए उपन्यास से भी अधिक तन्मयता का अनुभव होता है और पाठक प्रभावित होता चला जाता है।

इसका पहला भाग भी मैंने पढ़ा है। ये सब पात्र अपने संस्कार और स्वभाव के वशवर्ती हो बरतते तो हैं; परन्तु प्रत्येक के जीवन में एक ऐसा समय आता है जब वह गहरे आत्म-निरीक्षण में डूबता है और अपने दुष्कर्मों पर पश्चात्ताप करता है। प्रत्येक मनुष्य जब कोई काम करता है तब अधिकांश में वह उसे अच्छा समझ करके ही करता है; परंतु सभी समय, सभी अवसरों पर उसकी बुद्धि समतोल और निर्विकार नहीं रहती। ऐसी सात्विकता मनुष्य की बुद्धि म तभी आ सकती है और रह सकता है जब वह उसे स्वार्थ, अहम्, या रागद्वेष के भाव से दूर रख सके। जबतक मनुष्य में कुछ भी लोकैषणा या महत्वाकांक्षा बाकी है या उसे कुछ भी लोकसिद्धि करना है तब तक उसके विचारों, भावों और

कार्यों का सर्वांश में निर्दोष रहना असंभव है। लेकिन जाग्रत, साधनाशील, कर्तव्य-पालक और लोकसेवक के जीवन में ऐसे प्रसंग आते ही रहते हैं जब वह क्षुद्रताओं से, मलिनताओं से और बाहरी उपाधियों से ऊपर उठ कर अंतरतम में प्रवेश करता है और हंस की तरह दूध और पानी को अलग करता है। जो मनुष्य ऐसी प्रवृत्ति रखते हैं वे गिरते-पड़ते भी आगे बढ़ते चले जाते हैं और अन्त में शान्ति और समाधान पाते हैं। इसके विपरीत जो बाह्य जगत् में उसकी उपाधियों और आकर्षणों में ही डूबता-उतराता रहता है वह महान् दिखते हुए भी, महान् कार्यों का कर्ता कहलाते हुए भी, किसी भी क्षण धड़ाम से गिर सकता है। कौरवों और पांडवों में यही फर्क था। पांडव सभी सुसंस्कृत, निर्दोष, निर्विकार और धर्मात्मा थे, सो बात नहीं। इसी प्रकार कौरवों में सभी नराधम और दुष्टात्मा थे, ऐसा नहीं कह सकते; परन्तु पांडवों को जब कभी धर्मपथ छोड़ना पड़ा तो उनके मन को उस समय भी कष्ट हुआ; क्योंकि वे अपने कर्तव्य और धर्म के प्रति जाग्रत थे युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण के-जैसे मार्ग-दर्शकों के निकट रहने के कारण। उधर कौरव, भीष्म और विदुर के जैसे नीतिज्ञों के रहते हुए भी अन्याय और अत्याचार करने में उलटा अभिमान समझते थे; क्योंकि वे लोकैषणा में डूबे हुए थे और इसलिए मदान्ध हो गये थे। पांडवों के सामने जहाँ कर्तव्य-पालन तथा न्यायोचित अधिकार की प्राप्ति मुख्य थे तहां कौरवों के सामने 'येनकेन प्रकारेण' राज्याधिकार, राज्यविस्तार और राज्योपभोग मुख्य था। पांडवों में न्याय, धर्म और परमार्थ की प्रवृत्ति मुख्य थी, कौरवों में योग ऐश्वर्य की वृत्ति। इसीलिए कौरव भीष्म और विदुर के सदुपदेशों और श्रीकृष्ण के सत्परामर्शों से लाभ न उठा पाये और पाडवों ने हर महत्व-पूर्ण और आन-बान के प्रसंग पर श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर के निर्णयों का स्वागत किया और उनसे लाभ उठाया। तिस पर भी श्रीकृष्ण तक के लिए यह नहीं कह सकते कि उनसे धर्म या आत्मा के प्रतिकूल कोई बुरा काम न हुआ हो। मगर श्री नाना भाई के इन चरित्र-चित्रणों की खूबी

यही है कि प्रत्येक पात्र किसी-न-किसी अवस्था में आत्मनिरीक्षण करता है और पश्चात्ताप की पुनःस्थिति में अपने-अपने कृत-कर्मों का विश्लेषण आप ही करता है। यह 'महाभारत के पात्रों' का अमूल्य धन और देन है।

एक और विशेषता इसमें है। जो घटनायें अगम्य और रहस्यपूर्ण हैं उन्हें बुद्धिगम्य बनाने का प्रयत्न इसमें किया गया है। बुद्धि का यह स्वभाव ही है कि वह हर चीज को अपनाना चाहती है और अपनी पहुंच के परे की वस्तुओं के विषय में भी अपनी शक्ति पर कुछ निर्णय करना पसंद करती है। बुद्धिशील श्री नानाभाई ने भी इन पात्रों के रहस्यपूर्ण और दुर्बोध प्रसंगों का बौद्धिक स्पष्टीकरण करने का समर्थ प्रयत्न किया है।

अनुवाद में मूल गुजराती के भावों की और प्रवाह की अच्छी रक्षा की गई है और पहले भाग में भाई वियोगी हरिजी ने जिस 'गुजरातीपन' की तरफ इशारा किया था, वह भी इस दूसरे भाग में नहीं पाया जाता। मुझे आशा है कि हिन्दी-संसार इसकी भी उचित कद्र करेगा।

दिल्ली
४—७—३९

हरिभाऊ उपाध्याय

पात्र-परिचय

१. भीमसेन १—५७

लाक्षागृह—हिडिंबा राक्षसी—बकासुर का वध—द्यूत-सभा में प्रतिज्ञा—भीमसेन का क्षात्रधर्म—सैरेन्ध्री का गन्धर्व—रुधिरपान—अभिमान दूर होता है—

२. अर्जुन ५८—१५०

एक लक्ष्य—द्रौपदी का स्वयंवर—अर्जुन का वनवास—यह कैसा कुलधर्म—खाण्डव-वन में आग—सारथी बृहन्नला—युद्ध की तैयारी—धर्म-संकट—कुरुक्षेत्र के मैदान में—अश्वत्थ वध—शतरंज के सभी मोहरे एकसे—

महाभारत के पात्र

भीमसेन

: १ :

लाक्षागृह

"खड़ा रह, दुष्ट! खड़ा रह! अभी तेरी मरम्मत करता हूं!" वारणावत के राजमहल में पलंग पर पड़े-पड़े भीमसेन सपने में चिल्ला उठा।

"क्यों, बेटा, भीम! क्या है?" माता कुन्ती ने उठकर उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए कहा।

कुन्ती के हाथ का स्पर्श होते ही भीमसेन जग पड़ा और कुन्ती की ओर एकटक देखने लगा।

"बेटा, क्या है?"

"कौन, मां!" कहकर भीम कुन्ती के गले से लिपट गया।

"क्या बात है बेटा, तुम चौंक क्यों गये?"

"कुछ नहीं, मां! मुझे सपना आया था। एक राक्षस तुम्हें और भाई साहब को उठाकर ले जा रहा था। इसलिए मैं उसे पकड़ने दौड़ा था।"

"मैं तो तुम्हारे पास ही हूं।"

"लेकिन भाई साहब कहां हैं?"

"वह उधर किसी गहरे विचार में पड़ा है।"

"लेकिन मां, एक बात कहता हूं। अब हमें इस महल में नहीं रहना चाहिए। गांव में रहे, तो वे दिन कब और कैसे बीत गये यह मालूम भी नहीं पड़ा। लेकिन जबसे इस महल में आये हैं तब से एक रात भी ऐसी नहीं बीती जो कोई सपना न देखा हो।" भीम उठकर बैठ गया।

"स्थान-परिवर्तन होने पर बहुत बार ऐसा हो जाता है।" कुन्ती बोली।

"स्थान परिवर्तन क्या? इस महल में एक गंध-सी आती है कि जिससे सिर भिन्ना उठता है। यों यह महल बिलकुल नया है, सुविधा भी इसमें हर बात की है, लेकिन पता नहीं कहां से ऐसी अजीब सी बदबू आती है कि चैन नहीं पड़ती!" भीम ने मुंह बनाकर कहा।

"पुरोचन कहता था कि महल की दीवारें हाल की ही बनी हुई हैं और उनका रङ्ग रोगन अभी सूखा नहीं है, इस कारण यह बदबू है। थोड़े दिन के बाद यह नहीं रहेगी।" कुन्ती भीम के बालों को संवारते हुए बोली।

"लेकिन मां, अचरज की बात तो यह है कि जब पुरोचन यहां आता है तब यह बदबू कुछ बढ़ जाती है।" भीम बोला।

"बेटा, यह तुम क्या कहते हो! वह तो बेचारा हमारी हाजिरी में हमेशा तैयार रहता है।" कुन्ती ने भीम के माथे पर हाथ फेरते हुए कहा।

"मां!" युधिष्ठिर अपने विचारों से चौंकते हुए से बोले —"भीमसेन ठीक कहता है। शास्त्र में लिखा है कि जैसे पदार्थों में बदबू आती है वैसे ही आदमियों में भी आती है।"

"भाड़ में जाय तुम्हारा शास्त्र! आदमी में यों ही कहीं बास आती है? भीम तो निरा पागल ही है। दुर्योधन ने जब लड्डू में ज़हर खिलाया था, तब तो लड्डू में ज़हर की बास नहीं आई, और इस पुरोचन में तुझे बास आती है! तेरी नाक में हो क्या गया है?" कुन्ती ने कहा।

"माँ! तुम मानो या न मानो, लेकिन ज़हर के लड्डू खाते समय भी

कुछ घिन-सी आ रही थी। और जबसे हम लोग इस महल में आये तबसे भी वैसी ही घिन आ रही है।" भीम बोला।

"तुम्हें तो वहम होगया है मालूम होता है। लो, यह सहदेव आया। कहो, क्या ख़बर है?" कुन्ती ने पूछा।

"हस्तिनापुर से एक आदमी आया है, वह भाई साहब से मिलना चाहता है।" सहदेव ने कहा।

"किसने भेजा है।" भीम ने पूछा।

"महात्मा विदुर ने।" सहदेव बोला।

"अच्छा, उसे यहां भेज दो। और देखो, अर्जुन क्या कर रहा है?" युधिष्ठिर बोले।

"शङ्करजी के मेले में उसे कुछ देखना बाकी रह गया था उसे देखने नकुल के साथ गये हैं।" सहदेव उत्तर देकर चला गया।

सहदेव के चले जाने के कुछ देर बाद विदुर का भेजा हुआ आदमी आया।

"कहो, कहां से आये हो?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"हस्तिनापुर से।"

"तुमको विदुर चाचा ने भेजा है?"

"हाँ, महाराज!"

"तुमको विदुर चाचा ने ही भेजा है इसकी क्या पहचान?" भीम ने आनेवाले आदमी की ओर तीखी नजर से देखकर पूछा।

"पहचान है। आप सब जब हस्तिनापुर से रवाना हुए उस समय महात्मा विदुर ने महाराज युधिष्ठिर से एक गुप्त बात कही थी, वही निशानी विदुरजी ने मुझे दी है।" उस आदमी ने निःशंक होकर जवाब दिया।

"भाई साहब! कौन-सी गुप्त बात थी वह?" भीम ने पूछा।

"क्या उसका अब वक्त आ गया?" युधिष्ठिर ने चिन्तातुर होकर आने वाले से पूछा।

"हां, महाराज! उस आपत्ति का समय अब आ गया है।" उस आदमी ने गम्भीर होकर कहा।

"फिर आपत्ति!" कुन्ती घबराई।

"भाई साहब, चाचा जी ने क्या कहा है? मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आया।" भीम बोला।

"मां, भैया भीम! तो लो सुनो। हम लोगों को जिस महल में रक्खा गया है उसी में हम सबको जिन्दा जला देने की दुर्योधन की मंशा है।" युधिष्ठिर ने समझाया।

"बेटा! तुम यह क्या कह रहे हो?" कुन्ती व्याकुल होकर बोली।

"मैं सच कहता हूं। इस महल की दावारें घी, तेल, मांस, चरबी, राल, सन, लाख आदि ऐसी चीजों से बनाई गई हैं जो तुरन्त जल उठने वाली हैं।" युधिष्ठिर कहने लगे।

"तो यों कहो न कि इन दीवारों में से ही बास आ रही है?" भीम बोला।

"और हम लोगों को भुलावे में रखकर जीवित जला देने के लिए ही पुरोचन को यहां पर रक्खा गया है।" युधिष्ठिर ने सब बात खोलकर रख दी।

"मुए पुरोचन! सत्यानाश हो तेरा! तेरे घर में कोई दिया जलाने वाला भी न रहे!" कुन्ती के मुंह से सहसा निकल पड़ा।

"ये सब बातें हम लोगों के हस्तिनापुर से रवाना होते समय विदुर चाचा ने मुझे गुप्त भाषा में बता दी थीं।" युधिष्ठिर फिर बोले।

"और फिर भी हम लोग यहां आये!" भीम क्रोध से भभक उठा।

"भैया भीम! हमारे लिए दूसरा कोई चारा नहीं था। अभी हमें हस्तिनापुर में आये ही कितने वर्ष हुए? सारा खजाना दुर्योधन के हाथ में है; पितामह, द्रोण आदि हमें कितना ही चाहें, फिर भी वे जिसका अन्न खाते हैं उसीको आशीर्वाद देते हैं। ऐसी हालत में हम यहां न

आये होते तो हस्तिनापुर में ही दुर्योधन कोई जाल बिछाकर हम लोगों का काम तमाम कर देता।" युधिष्ठिर दुःख के साथ कहने लगे।

"तो हम क्या हमेशा दुर्योधन से डरते रहेंगे ? भाई साहब ! आप क्या कह रहे हैं ? मुझे अगर यह मालूम होता तो मैं यहां आता ही नहीं, और हस्तिनापुर ही में दुर्योधन से निबट लेता।" भीम से न रहा गया।

"बेटा, जरा शान्त हो। जिस पापी ने लड्डू में जहर खिलाकर तुझे गंगा में फेंक दिया वह और क्या नहीं कर सकता ? मैंने तो उसी दिन तेरी आशा छोड़ दी थी।" कुन्ती बोली।

"पाण्डु-पुत्र क्या इतनी आसानी से मरने के लिए पैदा हुए हैं ?" भीम बोला।

"तुम तो मेरी उमगों को पूरा करने वाले हो, बेटा ! मां पुत्र को नो महीने पेट में रखती है और मौत के समान प्रसूति का कष्ट झेलती है, वह किन आशाओं को लेकर, यह तुम पुरुष नहीं समझ सकते। तुम लोगों का मुंह देखने के लिए तुम्हारे पिता कितने आकुल हो रहे थे, यह मैं जानता हूं। फिर मैं तो तुम्हारी जननी हूं। जन्म होने पर तुम्हारे पिता को कितनी खुशी हुई थी !" कुन्ती उन दिनों को याद करती हुई बोली।

"तो मां ! मुझे आज्ञा दो। मैं आज ही हस्तिनापुर जाकर दुर्योधन से निबट लेता हूं।"

"बेटा, इतनी जल्दी न कर।" कुन्ती बोली।

"भाई भीमसेन ! अभी हम लोगों को कुछ समय और युक्ति से काम लेना पड़ेगा।" युधिष्ठिर समझाते हुए बोले—"कुछ समय बाद, जब हम लोग अपने पैरों पर खड़े हो जायंगे, दस-पांच वीर राजा हमारे साथ हो जायंगे, द्रव्य की भी थोड़ी अनुकूलता हो जायगी और लोगों पर हमारा प्रभाव भी पड़ने लगेगा, तब फिर हम जो कुछ करना चाहेंगे वह कर लेंगे। इसी विचार से उस रोज मैंने विदुर चाचा का कहना मान लिया था और हम सब लोग यहां आ गये।"

"तो फिर, ठीक है। सोच-समझकर जो उचित समझें वही करें।" भीम ने धीमी आवाज में कहा।

भीम को शांत करके युधिष्ठिर उस आदमी की ओर फिरे और बोले—"तो कहो, तुम हमारी क्या मदद करोगे? विदुर ने तुमसे क्या करने को कहा है?"

"महात्मा विदुर का मुझे हुक्म है कि पुरोचन कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन लाख के महल में आग लगावेगा; इसलिए तुम पहले जाकर एक बड़ी-सी सुरङ्ग बनाओ। उस सुरङ्ग का एक मुंह महल में रखना और दूसरा गंगा नदी के किनारे निकले।"

"दूसरा मुंह रखा जायगा दुर्योधन के महल के बीचोंबीच।" भीम गरज कर बोला।

"भीमसेन, जरा शान्त रहो। अच्छा, तो तुम सुरंग तैयार करो। इसे तैयार करने में कितने दिन लगेंगे?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"दस दिन काफी हैं।"

"तो फिर आज से ही काम शुरू कर दो।"

"जैसी महाराज की आज्ञा।" कहकर वह आदमी चला गया।

"बेटा युधिष्ठिर, जब से यह बात सुनी है तभी से मेरा दिल कांप रहा है। अभी हमारे भाग्य में ऐसे और कितने दिन लिखे होंगे, इसका जब मैं विचार करती हूं तो आंखों के आगे अंधेरा छा जाता है। मैं, वसुदेव की बहन और महाराज पांडु की रानी हूं। जब तुम लोगों को लेकर वन से हस्तिनापुर के लिये रवाना हुई तब ऋषि-मुनियों ने तुम्हें आशीर्वाद दिया था कि ये चक्रवर्त्ती राजा होंगे। और यह भीम छुटपन में एक बार मेरी गोदी से नीचे गिर गया तो फर्श का पत्थर टुकड़े-टुकड़े हो गया था। ऐसे मेरे बलवान भीम को आज दुश्मन से बचने के लिए युक्तियां सोचनी पड़ती हैं। यह विचार करते मेरा हृदय बिंधा जाता है।" कुन्ती की आंखें भर आईं।

"और ये नकुल-सहदेव!" कुन्ती की आंखों में से आंसू टपकने

लगे। "इससे तो अच्छा होता कि मैं भी माद्री की तरह तुम्हारे पिता के साथ चली जाती। लेकिन मेरे भाग्य में यह जो सब देखना बदा था!"

"मां! इस प्रकार दुःखी क्यों होती हो?" भीम दीन-सा होकर बोला—

"दुःखी न होऊं तो क्या करूं? अपने बच्चों की यह हालत देखकर बेचारी मां कैसे अपने दिल को तसल्ली दे।

"मां इस प्रकार अधीर मत बनो। हम तेरी कोख से पैदा हुए हैं। हमारी नसों में क्षत्रिय का खून बह रहा है। आज अगर रात है तो कल सुबह अवश्य होगी और पूर्व दिशा में नवप्रभात की लाली निकलेगी।" युधिष्ठिर उत्साह में आकर बोले।

"मां! बचपन में खेल में जिस तरह कौरवों को पेड़ हिलाकर नीम की निबौरियों के समान गिरा दिया करता था उसी तरह इन सबको गिरा कर तेरी गोदी में सारे हस्तिनापुर का राज्य रख दूं। तेरे कहने भर की देर है।" भीम से न रहा गया।

"बेटा भीम! तुम नहीं जानते। तुमने मेरे पेट से जन्म लिया है और बचपन से ही जंगलों में ऋषि-मुनियों के सहवास में रहे हो, इसलिए तुम छलकपट की बातें बिलकुल नहीं जानते। हस्तिनापुर के महलों के अन्दर रोज कितने षड्यन्त्र रचे जाते हैं, यह जानना हो तो जाकर मां गंगा और यमुना से पूछो! उनका गहरा जल इन बातों का पुराना साक्षी है। इस-लिए आज तो जिस प्रकार बचा जा सके उस तरह अपने को बचाना यही एक मात्र उपाय है।" कुन्ती बोली।

"तो सुरङ्ग तैयार हो जाने पर हम लोग ही क्यों न इस महल में आग लगा दें?" युधिष्ठिर बोले।

"भाई साहब, बिलकुल ठीक कहा आपने। मैं इस महल में आग लगा दूंगा और इस पापी पुरोचन को तो सबसे पहले इसमें झोंकूंगा।" भीम बोला।

"ठीक है, तो महल में आग लगाकर हम सब सुरङ्ग के रास्ते बाहर निकल जायंगे। वहां गंगा के किनारे विदुर चाचा ने नाव तैयार कर रक्खी होगी, उसी में बैठकर हम गंगा पार पहुँच जायंगे।" युधिष्ठिर ने कहा।

"ठीक; अब चित्त में चैन हुआ।" कुन्ती बोली।

"तो भीम अब सुरंग की तैयारी का ध्यान रखना और हम सबकी किसी को खबर भी न हो, इसका पूरा ध्यान रखना।" युधिष्ठिर ने कहा।

सुरङ्ग तैयार हो जाने पर किस तरह महल जलाया जायगा और किस तरह पुरोचन को भस्म किया जायगा, इसका विचार करता हुआ भीमसेन बगीचे में घूमने लगा। कुन्ती रसोई-पानी के काम में लगी और महाराज युधिष्ठिर नगर में अर्जुन और नकुल की खोज में गये।

: २ :

हिडिंबा

वारणावत के लाख के महल को जलाकर पाँच पाण्डव तथा कुन्ती सुरङ्ग के रास्ते गंगा-किनारे पहुँचे और नाव से उस पार गये। उन्हें जंगलों में होकर जाना था।

उस ज़माने में यह सारा प्रदेश बीहड़ और जगलो व झाड़ियों से भरा हुआ था और यहां राक्षसों का राज्य था। राक्षस आर्यों से भिन्न जाति के थे, लेकिन थे मनुष्य ही। हमारे देश के अनेक भागों में वे फैले हुए थे।

पाण्डव ऐसे प्रदेश से बिलकुल अनजान थे। उनको कहां जाना है, इसका उन्हें ज्ञान न था; न घने जंगलों के रास्तों का ही उन्हें कोई जानकारी थी। इन घने जंगलों में कहीं तो बड़े-बड़े गड्ढे, तो कहीं बड़ी-बड़ी टेकरियां; कहीं बिलकुल उजाड़-वीरान जगह, तो कहीं सूर्य की किरणों का भी प्रवेश न हो सके ऐसी घनी झाड़ियां; कहीं फूलों की सुगंध, तो कहीं बड़े-बड़े कांटे; कहीं मनोहर घास और उसपर चरनेवाले हरिण तो कहीं विशाल वृक्ष जिनकी शाखों से अजगर लिपट रहे हैं।

चलने में सबसे आगे भीम रहता था; उसके पीछे युधिष्ठिर और कुन्ती; उनके पीछे नकुल और सहदेव की जोड़ी; और सबसे पीछे अर्जुन।

रास्ता भूलते,कांटे और झाड़ियां जो रास्ते में आतीं उनसे व पेड़ों की दीवारों को तोड़ कर रास्ता निकालते भीम के पैर हाथ व जाघें छिल जातीं, लाल-सुर्ख हो जातीं, कभी-कभी वह थक कर चूर हो जाता, तो कभी पीने को पानी न मिलने से मुंह भी सूख जाता और प्राण निकलने से लगते लेकिन पाण्डव तो चुपचाप भीमसेन के पीछे-पीछे चले जाते थे।

"बेटा भीम, जरा सुस्ता ले। तू तो चला ही जारहा है! अब तो तेरे पैर दुखने लगे होंगे। देख, तेरी जांघें छिल कर कैसी हो गई हैं?" कुन्ती बोली।

"मां, मेरी फिकर मत कर। तू भी तो बड़ी देर से चल रही है। आ, तुझे मैं अपने कन्धे पर बिठा लूं।" भीम कुन्ती को लेने के लिए रुका।

"मैं नहीं बैठती। सुरङ्ग से निकलते समय जो तेरे कन्धे पर बैठी थी वह इस जीवन में तो मैं कभी नहीं भूलूंगी। मैं तेरी मां नहीं कोई लेनदार निकली!" कुन्ती की आंखों में पानी भर आया।

"मां, तू तो व्यर्थ का शोक करती है। मुझे इस तरह से कभी थकावट नहीं आती।" भीम ने कहा।

"तुम्हें थकावट क्यों मालूम होगी? हम सब तो हैं आदमी; हमें शरीर है और शरीर में खून और मांस है, इसलिए हमें तो थकावट लगती है। और तू है पत्थर का बना हुआ, जिससे तुझे न तो थकान आती है और न भूख-प्यास ही लगती है।" कुन्ती ने ताना-सा मारते हुए जवाब दिया।

"मां, मेरी बात तो सुनो!"

"बोल!"

"थकावट-थकावट में फर्क होता है। जो बात मन को अच्छी न लगती हो फिर भी किसी कारण करनी पड़ती हो, उसकी थकावट एक तरह की होती है और जो बात मन को अच्छी लगती है, यही नहीं बल्कि उसे करने से मन में एक तरह की तृप्ति का अनुभव होता हो तो उसे करने में थकावट महसूस होने पर भी मन उसे थकान के रूप में स्वीकार नहीं करता।

उल्टे जब-तब उसी को फिर-फिर करने की इच्छा हुआ करती है।" भीमसेन बोला।

"भीम ! तू ऐसी समझदारों की-सी बातें करना कबसे सीख गया ? यह तुझे किसने सिखाया ?" युधिष्ठिर बोले।

"पिछले पन्द्रह दिनों से पैरों को जो शान्ति नहीं मिली उससे अपने-आप समझदारी पैदा हो गयी।" कुन्ती बोली।

"भाईसाहब ! और कुछ तो मैं जानता नहीं, लेकिन सच मानिये जंगलों में भटकना, दस-पाच आदमियों को पीठ पर लादकर भागना, बड़े-बड़े वृक्षों को जड़-मूल से उखाड़ फेंकना, खड्डे और टेकरियों को लांघ जाना, जंगल में काली अंधेरी रातें जब चारों ओर सांय-सांय करती हों और शेर गर्जता हो तो भी उसमें से निडर होकर चले जाना, इन सबमें मुझे तो कुछ और ही आनन्द आता है। ऐसे ही प्रसंगों पर मुझे तो जीवन का आनन्द आता है। मां ! सच जानो, सामने के सुदूर हिमाच्छादित शिखरों की तरफ जो नजर डालता हूं तो मेरे मन में न जाने क्या-क्या विचार उठते हैं और ऐसा लगता है मानो पहाड़ मुझे बुला रहे हैं ? और मैं उनकी ओर खिचा चला जाता हूं ! तुम जब मानसरोवर की और कुबेर के गंधर्वों की बातें किया करती हो, तो मेरा मन छटपटाता रहता है, और कब उड़ जाऊंगा यही विचार मन में उठते रहते हैं। इन जंगलों में कहीं मदमाते हाथी मिल जायं तो कितना अच्छा हो ! मेरा मन उनको पाने के लिए ही डोलता रहता है। रात के समय जब तुम सब लोग सो जाते हो तब मैं जग जाता हूं और खयाल किया करता हूं कि कोई भयंकर राक्षस आ जाय तो उससे जूझने में क्या मजा आवे ! तुम लोगों को दुःख मालूम देता है वही मेरे मन के आनन्द की चीज़ है; और ऐसे मौकों से खाली, सादा, सरल जीवन मुझे बिलकुल नीरस लगता है। इसलिए मां, मेरी थकान का विचार मत करो।"

"भीमसेन ! तुम्हारी बात तो ठीक है। लेकिन मां, अब खूब थक

गई हैं, और नकुल-सहदेव भी पीछे रह गये हैं, इसलिए हम लोग यहीं कुछ देर आराम करें तो ठीक ।" युधिष्ठिर बोले ।

"बेटा, मुझे प्यास भी लगी है; थोड़ा पानी तो ले आ ।" कुन्ती बोली ।

"मां, इस पेड़ के नीचे बैठो । इधर सारसके बोल सुनाई पड़ रहे हैं, इस लिए नजदीक ही कहीं जलाशय होना चाहिए । मुझे पानी लेकर आया ही समझो ।"

इतना कहकर भीम पानी लेने चला गया और चारों भाई और कुन्ती माता पेड़ के नीचे आराम करने के लिए ठहर गये ।

× × ×

जिस वन में पाण्डव विश्राम करने बैठे, वह हिडिंबा नामक राक्षसी का था । उसके पास ही एक दूसरा वन उसके भाई हिडिंब का था । जिस समय पाण्डव पेड़ के नीचे सुस्ता रहे थे हिडिंब ने दूर के एक पेड़ पर से उनको देखा । इस तरह अपने पास इतनी सरलता से मनुष्य के आ जाने से वह बहुत प्रसन्न हुआ और हिडिंबा से कहने लगा—"बहन, तू जा और उस पेड़ के नीचे कौन बैठे हैं इसकी खोज-खबर ले आ । मुझे वहां मनुष्य की गन्ध आती है और मेरे मुंह में पानी आरहा है । आज कितने दिनों से मुझे मनुष्य का रक्त और मांस नहीं मिला; इसलिए आज हम खूब पेट भर के खावेंगे । तू जा और पता लगाकर जल्दी वापस आ ।"

इधर भीमसेन सरोवर के पास गया; वहां जाकर पानी पिया, पानी में उतर कर खूब नहा-धोकर अपनी थकान मिटाई और भाइयों तथा मां के लिए पानी लेकर वापस आया । लेकिन आकर देखता है कि मां और चारों भाई गहरी नींद में सो रहे हैं । भीम ने पानी को ढंककर रख दिया और मां और भाइयों की रखवाली के लिए बैठ गया ।

इतने ही में थोड़ी दूर पर हिडिंबा दिखाई दी । हिडिंबा ने दूर से भीमसेन को देखा और देखते ही उस पर आसक्त होगई । भीमसेन का वज्र जैसा शरीर, हाथी के सूंड जैसे हाथ, विशाल छाती, बड़े-बड़े पेड़ों

को उखाड़ डाल देने वाली उसकी जांघें, और आंखों का तेज और उसके सारे शरीर में से निखरता हुआ नवयौवन—इन सबने हिडिंबा को मोह लिया। हिडिंबा के शरीर पर मानो वसन्तऋतु का असर होगया। उसके अवयवों में, उसकी आंखों में, उसके मुंह पर, उसकी वाणी में, उसके हाव-भाव में निखरती हुई जवानी स्पष्ट दिखाई दे रही थी। युवती के अनुरूप अपना वेश बनाकर और कपड़े पहनकर हिडिंबा आगे आई और बोली—"ओ परदेशी मानव! तुम्हें पहचानती तो नहीं, लेकिन तुम्हें देखते ही मेरे सारे शरीर में एक अजीब परिवर्तन मालूम हो रहा है। मेरा सारा शरीर और मन तुम्हारी ओर तेजी के साथ खिंचा चला जा रहा है और न जाने क्यों मैं परवश-सी बनी जारही हूं। इसलिए तुम दया करके मुझे स्वीकार करो। मैं इस वन की मालिक हूं, तुमको मैं राक्षसों के त्रास से बचा लूंगी। मेरी इस याचना को तुम जरूर स्वीकार करो।"

यह कहते हुए हिडिंबा ने भीम की तरफ कनखियों से देखा। भीम को कुछ ऐसा रोमांच हो आया जैसा पहले उसने कभी अनुभव नहीं किया था। कुछ देर भीम अपने को भूल गया। फिर जरा स्वस्थ होकर उसने हिडिंबा की नजर-से-नजर मिलाई और कुछ कहना ही चाहता था, इतने में पीछे हिडिंब दिखाई दिया।

"दुष्ट राक्षसी! मैंने तुझे इन लोगों का पता लगाने के लिए भेजा था या रूपवती बनकर इनके साथ बातें करने के लिए? तूने तो आज हमारे राक्षस-कुल की लाज लुटादी है। ये आर्य तो हम राक्षसों का भोजन हैं। तू सामने से हट जा, मैं इन लोगों से निबट लेता हूं। ओ मोटल्ले! चल खड़ा हो। काल ने मालूम होता है तुझे मेरे लिए ही पैदा किया है। इस बुढ़िया को जगाकर इससे मिल ले। फिर तो ये लोग भी मेरे ही पेट में निवास करने वाले हैं, इसमें कोई शक नहीं।" इस प्रकार कहते हुए हिडिंब ने अपना सिर जोर से हिलाया और अपनी पीली आंखों से घूरकर भीम की ओर देखा।

"दुष्ट राक्षस! तुझे अगर अपनी जान प्यारी हो, तो दूर भाग जा।

संभव है तूने आजतक कई आर्यों को हजम कर लिया होगा, लेकिन यह जान लेना कि इस भीमसेन को हजम करना मुश्किल है। हिडिंबा ! अगर अपने पिता के वंश को कायम रखना हो, तो अपने इस भाई को समझा ले। नहीं तो इसका काल आया ही समझो।" भीम ललकार कर खड़ा हो गया।

हिडिंबा अपने भाई के कन्धे पर हाथ रखकर उसे समझाते हुए बोली—"भाई ! गुस्से मत हो ! तुम मेरे सगे भाई हो। यह पुरुष मेरे मन का स्वामी बन चुका है। परम्परागत सम्बन्धों का बन्धन इन अन्तर के सम्बन्धों के सामने किस प्रकार टूट जाता है, यह तुम नहीं जानते। भाई ! मैं तुम्हारे पैर पड़कर प्रार्थना करती हूं कि इस पुरुष को छोड़ दे—मेरे स्वामी ! आपने मुझे अपने में कर लिया है, फिर भी मुझे कुछ कहने का अधिकार हो, तो मैं आपसे यही चाहती हूं कि आप मेरे इस भाई को मारें नहीं।" हिडिंबा ने कहा।

"लेकिन तेरा यह भाई तो अपने-आप ही अपनी मौत बुला रहा है, तब मैं क्या करूं ? मैं उसे कहां बुलाने गया था ?" भीम ने जवाब दिया।

"दुष्टा ! मुझे नहीं पता था कि तेरी वासना मुझे इतना मूर्ख और निर्लज्ज बना देगी। अगर मुझे ऐसी खबर होती, तो पहले मैं तुझे ही खतम करता और फिर यहां आता। मेरे सामने से हट जा दुष्टा। पहले तेरे इस मन के स्वामी को खतम करता हूं, उसके बाद तुझे देख लूंगा।"

"भैया मेरे ! मेरी इतनी-सी बात नहीं मानोगे ? मेरा कोई अधिकार नहीं ?" हिडिंबा गिड़गिड़ाने लगी।

"दूर हट कलमुंही ! न मैं तेरा भाई न तू मेरी बहन। हिडिंब की बहन ऐसी बेशर्म नहीं हो सकती।" इतना कहकर उसने हिडिंबा को जोर से धकेल दिया।

और भीम और हिडिंब का भयंकर युद्ध शुरू हुआ। दोनों एक दूसरे पर जोरों से हमला करते थे। एक-दूसरे के धक्के से पेड़ एक के बाद एक टूटते जा रहे थे। दोनों एक-दूसरे पर जोरों से घूंसों के प्रहार

करते थे। युद्ध के जोश में दोनों बड़े जोर से चिल्लाते थे। दोनों वीर नीचे ऊपर गिरते-पड़ते, लोट लगाते, जांघ-से-जांघ रगड़ते और दोनों की छाती-से-छाती रगड़ खाती थीं। इतने में अर्जुन जग गया और देखता है कि थोड़ी-ही दूर पर हिडिंब और भीम का युद्ध हो रहा है।

अर्जुन ने सबको जगा दिया। यह देखकर सब चिन्तित होने लगे। इधर शाम होने का समय भी आगया था। युधिष्ठिर सोच में पड़े "शाम होने से पहले यह राक्षस खतम हो जाना चाहिये, नहीं तो संध्या के बाद राक्षसों का बल बढ़ जाता है। इससे भीम को कठिनाई होगी।"

अर्जुन आगे बढ़ कर बोला, "भीम भाई! तुम थक गये होगे। लो, मैं तुम्हारी मदद को आया।"

"नहीं, अर्जुन! तेरी कोई जरूरत नहीं। मैं अकेला ही काफी हूं।"

इतना कहते ही भीम ने हिडिंब को पृथ्वी पर दे मारा और उसकी कमर पर पैर रखकर शरीर के एकदम दो टुकड़े कर डाले। हिडिंब जोर से चीख उठा और उसने दम तोड़ दिया। सारे जंगल में एकदम सुनसान हो गया।

हिडिंब को मारकर पाण्डव आगे रवाना हुए। हिडिंबा भी उनके पीछे-पीछे चलने लगी। कुछ दूर जाने के बाद भी जब किसी ने उसकी ओर नहीं देखा, तब वह बोली—"माताजी! मैं आपके पीछे-पीछे चली आ रही हूं, यह आपको मालूम है न?"

"कौन कहता है कि तुम आओ? तुम अपने वन में ही रहो न? मेरे बेटे को इतना पिटवाया, अब भी तुमको शांति नहीं हुई!" कुन्ती क्रोध के स्वर में बोली।

"तुम भी मुझे ऐसा कहोगी मां जी! मैं कोई तुम्हारे कहनेसे नहीं आ रही हूं, बल्कि एक आकर्षण के वश खिंची चली आ रही हूं। तुम्हारे इन पुत्र ने मुझे अपने वश में कर लिया है। मैं अपने मन से उनको स्वयं वर चुकी हूं।"

"ओ राक्षसी ! क्या कहती है तू ! स्वयं वर भी चुकी ? अरे ओ भीम ! यह क्या कहती है ?" कुन्ती आश्चर्य से बोली ।

"माताजी, आप भी मेरे जैसी ही स्त्री हैं, इसलिए सब समझ सकती हैं । जवानी में यह धक्का लगने पर मनुष्य कैसा दीन और निर्लज्ज बन जाता है, उसका तुमको कभी तो अनुभव हुआ ही होगा । इसलिए मेरी बात मानिये और ऐसा कीजिये जिससे आपका यह पुत्र मुझे स्वीकार करले। आप जो कहेंगी वह मदद मैं करूंगी, राक्षसों से आप सबकी रक्षा करूंगी, जहां जाना होगा वहां मैं सबको पहूंचा दूंगी और अपनी सारी सम्पत्ति आपके चरणों में रख दूंगी ।" हिडिंबा ने कहा ।

"युधिष्ठिर ! तुम्हीं बताओ अब क्या किया जाय ? मेरी तो कुछ समझ में नहीं आती ?" कुन्ती ने कहा ।

"मुझे ऐसा लगता है कि यह राक्षसी कामातुर है । दूसरे इस समय हमारा सहायक कोई नहीं है, इसलिए ऐसे राक्षसों के साथ भी सम्बन्ध क़ायम हो जाय तो समय पड़ने पर काम ही आयगा ।"

"लेकिन," तुरन्त ही कुन्ती बोली, "भीम जैसे बेटे को इस तरह राक्षसी के साथ कैसे ब्याह दे सकती हूं ?"

यह सुनकर हिडिंबा बीच में ही बोल उठी, "माताजी ! एक बात आप समझ लें । हम राक्षस लोग आर्य लोगों की तरह जिन्दगी-भर के लिए ब्याह नहीं करते । हमारे शास्त्रकारों ने कहा है कि स्त्री को सन्तान की वासना होना स्वाभाविक है, इसलिए एक सन्तान हो जाय तबतक विवाह-सम्बन्ध रखकर बाद में वे अलग हो सकते हैं । मैं भी ऐसे ही विवाह की उत्सुक हूं । हमारा इस प्रकार का विवाह पूरा हो जाने के बाद मैं आपके पुत्र को आपके पास सुरक्षित पहुंचा दूंगी ।"

"क्यों भीम, तेरा क्या विचार है ?" कुन्ती ने पूछा ।

"मुझे इसकी पागलों की-सी व्यर्थ की बातें और इसके शास्त्रों की बातें समझ में नहीं आतीं । लेकिन अगर इसके साथ रहूं तो जंगलों में भटकने, विमानों में उड़ने, पहाड़ों की चोटी पर पहुंचने, समुद्र के ठेठ

तले में डुबकियां लगाने, उत्तर ध्रुव से ठेठ दक्षिण ध्रुव जाने, ज्वालामुखियों के मुंह में हाथ डालने, और सामान्य पुरुष कल्पना भी नहीं कर सकते ऐसे पृथ्वी के गर्भभागों में प्रवेश करने आदि का खूब मौका मिलेगा। इस बात का खयाल आने पर थोड़ी देर के लिए मन हो जाता है कि इस मौके को न छोड़ूं। लेकिन तुम्हें इस घोर जंगल में अकेले छोड़कर भीम कैसे जा सकता है?" भीमसेन ने जवाब दिया।

"मां! भीम को जाने दो। यह चाहे तो हिडिंबा के साथ विवाह करले। हिडिंबा! तू रोज दिन में भीमसेन के साथ रहना और शाम के पहले हम जहां हों वहां हमारे पास उसे पहुंचा दिया करना। राक्षसों पर विश्वास तो नहीं किया जा सकता, लेकिन तुझपर विश्वास रखकर मैं यह कहता हूं। जाओ! तुम्हारा कल्याण हो!" युधिष्ठिर ने आशीर्वाद दिया।

हिडिंबा कुन्ती और युधिष्ठिर के पैरों पड़ी और बोली—"प्रभु आपका भला करे! माताजी आपको प्रणाम करती हूं। आपने मुझपर विश्वास

होगये तब वन की रानी के साथ उसके महल की तरफ चला।

: ३ :

बकासुर का वध

"हाय राम ! मैं तुम सबको कैसे छोड़ सकूंगा ?"

कुन्ती और भीमसेन एकचक्रानगरी में एक ब्राह्मण के घर दालान में बैठे थे। वहां उन्हें यह करुण रुदन सुनाई दिया।

"मां ! यह कौन रोता है ?" भीम ने पूछा।

"आवाज तो ब्राह्मण की-सी लगती है। जा जरा अन्दर जाकर देख तो, क्या बात है ? मैं भी आती हूं।" कुन्ती बोली।

भीम और कुन्ती अन्दर गये तो देखा कि ब्राह्मण और ब्राह्मणी दोनों सिर पर हाथ रखकर रो रहे हैं। उनका छोटा लड़का ब्राह्मणी की गोद में बैठा हुआ हाथ-पैर हिला रहा है और लड़की एक कोने में खड़ी आंसू बहा रही थी।

भीम और कुन्ती को देख ब्राह्मण रो पड़ा—"हाय ! मैं इन लोगोंको किनके भरोसे छोड़ जाऊंगा।"

"अरे भाई !" कुन्ती ने ब्राह्मण के सिर पर हाथ रखकर पूछा " रो क्यों रहे हो ? क्या बात है, यह तो बताओ।"

"हुआ क्या, बहन ! मुझ अभागेका भाग फूट गया समझो" ब्राह्मण ने सिर धुनते हुए कहा, "मैं इससे कहता था कि चलो इस एकचक्रानगरी को छोड़ कर हम किसी दूसरे राज्य में रहने चले जायं; लेकिन यह नहीं मानी। 'मैंने इसी नगर में जन्म लिया है और बड़ी भी यहीं हुई हूं। मेरे सगे-सम्बन्धी भी यहीं रहते हैं। इसलिए मुझे दूसरे गांव में जाना अच्छा नहीं लगता।' यह कहकर घर से नहीं निकली। अब नतीजा सामने है। इसकी मां भी मर गई, बाप भी मर गया। यह भी बूढ़ी हो गई और अब आज मेरी भी मौत का बुलावा आ पहुंचा।" ब्राह्मण की आंखों से आंसुओं की धारा बह चली।

"लेकिन," कुन्ती ने कहा, "जरा शान्ति से अपनी बात हमें

समझाकर तो कहो यों अधीर होने से कैसे बनेगा ?"

"उसको समझकर भी क्या होगा ? यह दुःख ऐसा थोड़े ही है जिसमें कोई हिस्सा बंटा ले।" ब्राह्मण ने निराशा से जवाब दिया।

"लेकिन अपनी बात तो सुनाओ। बेटी, इधर आओ! कोने में क्यों खड़ी हो ?" कुन्ती ने लड़की को पुचकार कर अपने पास बुलाया।

"बहन! तुम इस नगर में नई हो, इसलिए मैं तुम्हें बताये देता हूं। भाई, तुम भी बैठ जाओ। सुनो, इस एकाचक्रानगरीके बाहर दूर एक बड़ा वन है, उसमें बक का नाम एक राक्षस रहता है।" ब्राह्मण कहने लगा।

"क्या नाम बताया ? बक ?" भीम ने पूछा।

"हां, बक। लोग उसे बकासुर कहते हैं।" ब्राह्मण ने जवाब दिया।

"यह करता क्या है ?" कुन्ती ने पूछा।

"वह इस नगरी की रखवाली करता है।"

ब्राह्मण अपनी बात जारी रखते हुए बोला—"एकचक्रा के ऊपर कोई दुश्मन चढ़ाई न करे, या कोई जंगली जानवर वगैरा तकलीफ न दे, यह देखने की सारी जिम्मेदारी बकासुर के ऊपर है।"

"तो बकासुर जबरदस्त मालूम पड़ता है।" भीम बोला।

"हां जी, वह अकेला ही बड़ा जबरदस्त है। तिस पर वह यहां अपनी फ़ौज के साथ रहता है, इसलिए उसके बल का क्या पूछना ?" ब्राह्मण बोला।

"जब यह सारा भार बकासुर के सिर पर है, तो फिर वह एक तरह से तुम्हारा राजा ही है, यही कहो न ?" कुन्ती बोली।

"नहीं जी हमारा दूसरा राजा है। वह यहां से दूर नेत्रकीय-गृह में रहता है। लेकिन राजा में दम हो तब न ? वह तो राजगद्दी पर एक पुतले के समान है।" ब्राह्मण ने समझाया।

"मां! इसका मतलब यह हुआ कि बकासुर ही राजा बन बैठा है। कोई पराक्रम दिखाने के लिए थोड़े ही रखवाली करता होगा ?" भीम बोला।

"हां, भाई! यही बात है! परोपकार का तो नाम है, असल तो यह अपना मतलब ही है।"

"बकासुर हम सब लोगों की जो रखवाली करता है उसके बदले में हम लोगों को हमेशा उसके आहार के लिए एक गाड़ी अनाज, दो भैंसे और एक मनुष्य देना पड़ता है।" ब्राह्मण बोला।

"रोज-रोज! हमेशा के लिए?" भीमसेन ने पूछा।

"हां, रोज। जैसे सूर्य का उगना निश्चित है वैसे ही यह रसद भेजना भी निश्चित ही है।"

"इस नगर में कितने घर हैं?" भीम ने पूछा।

"होंगे कोई सात-आठ हजार। हर घर की पन्द्रह-बीस बरस में एक बार बारी आजाती है।" ब्राह्मण ने कहा।

"तो मालूम होता है आज तुम्हारी बारी है?" कुन्ती ने पूछा।

"हां, कल मेरी ही बारी है।" ब्राह्मण ने लम्बी सांस लेते हुए कहा।

"लेकिन मान लो कि अपनी बारी हो और न जायं तो?" भीम ने सवाल किया।

"अगर कोई अपनी बारी पर न जाय, तो बकासुर और उसके आदमी आकर उसके घर को बरबाद कर डालते हैं और चाहें जितने आदमियों को उठाकर ले जाते हैं।" ब्राह्मण ने कहा।

"अपनी जगह किसी दूसरे आदमी को उसके पास भेज दें, तो?" भीम ने पूछा।

"घर में से एक आदमी को जाना चाहिए। चाहे जो चला जाय। अपने बदले किसी आदमी को खरीदकर भी भेजा जा सकता है।" ब्राह्मण ने जवाब दिया।

"ऐसी बात है?" भीम ने आश्चर्य से पूछा। "तो क्या इस नगर में मरने के लिए आदमी खरीदे भी जा सकते हैं?"

"हां, मेरे पास धन नहीं है, नहीं तो मैं भी किसी को खरीदकर भेज देता।" ब्राह्मण ने बताया।

"क्यों जी अपनी रखवाली के लिए इस बकासुर पर क्यों निर्भर रहते हो ? खुद ही अपनी रक्षा क्यों नहीं कर लेते ?" भीम ने पूछा।

"इतनी शक्ति न तो हमारे राजा में है, और न हमारे ही अन्दर है। हममें एकता तो बिलकुल ही नहीं है। कुछ दिन यहां रहोगे तो तुम्हें अपने-आप सब मालूम हो जायगा।" ब्राह्मण ने कहा।

"फिर तुम लोग इस प्रकार बकासुर को कबतक खाना देते रहोगे ?"

"पिछले चालीस बरसोंसे तो देते ही आरहे हैं। इस कारण सब इसके यहां तक आदी हो गये हैं और जिसका ही नम्बर होता है उसके सिवा औरों को इसके त्रास का खयाल भी नहीं होता।" ब्राह्मण ने कहा।

"तुम लोगों की तादाद तो कोई तीस-पैंतीस हजार है, फिर भी एक बकासुर के त्रास को दूर नहीं कर सकते ! आश्चर्य की बात है। तुम आप ठानलो तो अपनी रक्षा खुद ही कर सकते हो और बकासुर को बता सकते हो कि अब तुम्हारे संरक्षण की हमें जरूरत नहीं है।" भीम बोला।

"हम अपनी रक्षा खुद कैसे कर सकते है। यह हमारी समझ में ही नहीं आता ! बकासुर न हो, तो बाहरी दुश्मन हमें मार ही न डालें न ?" ब्राह्मण ने कहा।

"अरे भले आदमी, तुम तो बहुत डरपोक मालूम होते हो। लेकिन यह तो बताओ कि जहां बकासुर न होगा वहां के लोग कैसे जीते होंगे ?" भीम बोला।

"लेकिन मानलो कि हमने बकासुर को कहला दिया कि अब उसके संरक्षण की हमें कोई जरूरत नहीं है, तो क्या वह सीधी तरह हमारी बात मान लेगा ?" ब्राह्मण ने कहा।

"नहीं क्यों मानेगा ? अगर न माने तो तुम उसके पास अनाज, भैंसे और मनुष्य भेजना बन्द करदो।" भीम ने कहा।

"ऐसा करने पर तो बस इस नगरी का खात्मा ही समझो।" ब्राह्मण बोला।

"भाई! सारे गांव ने कभी ऐसा करके देखा भी है?" कुन्ती ने पूछा।

"सारे गांव का एक होना तो सपने में भी संभव नहीं है। पर मुझे याद आता है कि जब मैं छोटा था तब एक योगी ने गांववालों से कुछ कहा जरूर था।" ब्राह्मण कुछ याद करता हुआ-सा बोला।

"योगी ने गांव के सारे लोगों को इकट्ठा करके कहा था कि तुममें से किसी एक सुलक्षण आदमी को बकासुर के पास भेजो।" ब्राह्मण बोला।

"तो फिर?" भीम ने पूछा।

"तो गांव के अगुआओं ने इकट्ठे होकर यह निश्चय किया कि 'महाराज, हमारे यहां तो आप ही सुलक्षण व्यक्ति हैं। आपसे बढ़कर हमारे गांव में और कौन होगा?" ब्राह्मण ने बताया।

"फिर क्या हुआ?" कुन्ती ने पूछा।

"फिर योगी महाराज गये और बकासुर उन्हें खाने लगा। लेकिन वह तो बकासुर के गले में फंस गये। न अन्दर ही जाते थे और न बाहर ही निकलते थे।" ब्राह्मण ने कहा।

"तब तो बड़ा मजा आया होगा!" भीम बोला।

"थोड़ी देर के लिए सबको ऐसा मालूम होने लगा कि बकासुर अभी कै करके मर जायगा।" ब्राह्मण ने बात को जारी रखते हुए कहा; "लेकिन बकासुर के आदमियों ने अगुआओं को इकट्ठा किया और उनपर ऐसा जोर डाला कि सबने योगी महाराज की आरजू-मिन्नत करके उन्हें बाहर निकाल लिया और बकासुर के लिए भोजन वगैरा की पहले-जैसी बारी बांध दी गई। उस समय मैं बालक ही था। लेकिन मेरी मां और पिताजी यह बात अक्सर हमसे कहा करते थे।" ब्राह्मण ने अपनी बात पूरी की।

"तब तो तुम्हें अपनी बारी का यह काम करना ही पड़ेगा, क्यों?" भीम ने पूछा।

"हां, यह तो करना ही पड़ेगा। अभीतक हमारी बारी नहीं आई थी, इसलिए किसीकी बारी आई और किस माता ने अपने पुत्र को बकासुर के अर्पण किया इसका विचार ही हम नहीं करते थे। आज हमारी बारी है, इसलिए हममें से जो एक आदमी जायगा उसके लिए रो-पीट लेंगे और हताश होकर बैठ जायगे। बरस-छः महीने बाद फिर सब भूल जायंगे। सारी नगरी की यही मनोदशा है।" ब्राह्मण बोला।

"क्या तुम्हारी इस नगरी में एक आदमी भी ऐसा नहीं है, जो यह प्रण करले कि जबतक बकासुर का यह त्रास दूर न हो जाय तबतक सुख से नींद न ले?" भीम ने पूछा।

"मुझे तो ऐसा कोई नहीं दिखाई देता।"

"पैंतीस हजार की बस्ती में एक आदमी भी ऐसा नहीं, जिसके हृदय में बकासुर के त्रास से छुटकारा पाने की ज्वाला निरन्तर जलती रहे! और जब तक वह शान्त न हो तबतक उसे चैन न पड़े?" भीम ने फिर से पूछा।

"नहीं।"

"अरे भाई! क्या कहते हो तुम?" इस असुर का यहां इतना आतंक कि किसी का दिमाग जरा गरम नहीं होता? किसी का हृदय बेचैन नहीं होता? किसी की भुजा नहीं फड़कती? कोई यह सब देख कैसे सकता है? आंखें उसकी बाहर नहीं निकल पड़तीं ऐसे नामर्द लोग होगये हैं यहां के?" भीम का खून उबलने लगा।

"भाई, तुम जो-कुछ पूछते हो वह सब मैं समझ गया। जो बात तुम चाहते हो, वह यहां नहीं है। यह कटु सत्य है। हम सब मानव-देहधारी निरी मिट्टी के पुतले बने हुए हैं। कोई महापुरुष आगे आकर हमारे अन्दर प्राण फूके और हमें मर्द बनावे तभी कुछ हो तो हो। आज तो जैसे बने वैसे अपनी जिन्दगी के दिन काटने वाले पामर प्राणी हैं।" ब्राह्मण ने अपनी दीनता बताई।

"तब तो यही कहो कि तुम लोग बकासुर को मारना ही नहीं चाहते!" कुन्ती बोली।

"मारना तो है ही; लेकिन किसी मनुष्य के किये यह काम होगा, ऐसा हमें नहीं लगता! ईश्वर करे कि किसी प्रकार इस राक्षस की मौत होजाय, तो हम प्रभु का बड़ा उपकार मानेंगे।" ब्राह्मण ने कहा।

"तो भाई अब रोते क्यों हो? कल किसी एक को तो जाना ही है।" कुन्ती बोली।

"हममें से पहले कौन जाय, यही तो सवाल है।" ब्राह्मण ने कहा।

"तुरन्त ही ब्राह्मणी बोल उठी, "मैं तो कहती हूं की मुझे जाने दो। तुम दोनों बच्चों को पीछे से सम्हाल लेना।"

"लेकिन तुझे भेजकर मुझसे जिन्दा कैसे रहा जायगा?" ब्राह्मण बोला।

"पिताजी!" कुन्ती के पास खड़ी हुई ब्राह्मण की लड़की बोली, "मुझे ही भेज दो न! मैं यों भी तो पराये घर जाने वाली हूं। फिर दो दिन पहले या दो दिन बाद। यहां से तो जाना ही है।"

"तो अक्ल काम नहीं करती। तुम सबको खोकर मैं पीछे जिन्दा नहीं रहना चाहता; इसी तरह खुद मरकर तुम लोगों को दुःख में भी नहीं डालना चाहता।" ब्राह्मण दीन होकर बोला।

इस प्रकार उनमें बातचीत चल रही थी कि इसी बीच कुन्ती और भीम थोड़ी देर के लिए अपने कमरे में गये और जल्दी ही वापस आ गये।

"कहो भाई! तो फिर क्या निश्चय किया? कौन जायगा?" कुन्ती ने पूछा।

"अभी इनकी तबीयत तो ठीक हुई नहीं। तो फिर तय भी कैसे हो?" ब्राह्मणी बोली।

"तो भाई, मेरी एक बात मानोगे? कल तुममें से कोई भी न जाय।

मेरे पांच लड़के हैं, इसलिए तुम्हारी बारीमें मेरा यह लड़का चला जायगा" कुन्ती ने अपनी तजवीज रक्खी ।

"अरे, यह क्या कह रही हो ? पांच लड़के हैं तो क्या राक्षस के पास भेजने को ?" ब्राह्मणी बोली।

"ऐसी बात नहीं है। हम निराश्रितों को तुमने अपने घर आश्रय दिया है, उस उपकार का बदला मैं और किस तरह चुकाऊंगी ? फिर मेरे लड़के ने कितने ही राक्षसों को देखा है, कइयों को तो मार भी डाला है। उसका शरीर भी मजबूत है । तुम जानते हो कि रोज भिक्षा में से आधा हिस्सा इसी को देना होता है और बाकी के आधे हिस्से में हम पांचों अपना काम चलाते हैं । इसलिए कल इसे ही जाने दो। बहुत संभव है कि यह बकासुर को ही मार डालेगा ।" कुन्ती ने आग्रहपूर्वक कहा ।

"हम तो बच जायं और तुम्हारे पुत्र को राक्षस से भिड़ा दें, यह हमारे लिए कितनी बुरी बात है ?" ब्राह्मण ने कहा।

"परन्तु यह सब तो मैं तुमसे कह रही हूं। तुम थोड़े ही हमें आगे करके अपनी जान बचा रहे हो।" कुन्ती बोली । "क्यों बेटा, ठीक है न ?" उसने भीम से पूछा ।

"मां, मैंने तो जबसे यह बात सुनी है तभी से मेरे रोंगटे खड़े हो रहे हैं। मेरी भुजायें फड़कने लगी हैं। मेरी आंखें बकासुर को देखने के लिए छटपटा रही हैं। जिस गांव में हम रहें वहां बकासुर का जुल्म जारी रहे और हम लोग बैठे देखते रहें, यह हमें कैसे शोभा दे सकताहै? अतः कल तो मैं ही जाऊंगा।" भीम ने उत्तर दिया।

"जैसी तुम लोगों की इच्छा हो।" ब्राह्मण अपने आंसू पोंछते हुए बोला, "तो मैं निरुपाय हूं। भाई, तुम खुशी से कल जा सकते हो। लेकिन देखना, समय पर अगर नहीं पहुंचे तो बकासुर सीधा यहीं आकर हम सब लोगों का खात्मा कर देगा। तुमने अभी उसका क्रोध देखा

नहीं है । वह जब अपनी आंखें निकालता है, तब ऐसे-वैसे का तो दम ही निकल जाता है ।" ब्राह्मण बोला ।

"ठीक ! वक्त पर ही जाऊंगा । अब तुम उसकी फिक्र न करो ।" भीम ने कहा । और दोनों अपने कमरे में वापस गये ।

\+ + +

भीम सवेरे दो भैंसों की गाड़ी में अनाज भरकर जल्दी ही शहर से बाहर निकल गया, और बकासुर के वन के पास जाकर जोर-जोर से चिल्लाने लगा । भीम की जोरों की चिल्लाहट सुनकर बक बाहर आया और देखता क्या है कि एक मोटे भीमकाय मनुष्य ने भैंसों को तो बक के बगीचे में चरने के लिए छोड़ दिया है और खुद गाड़ी में रक्खे हुए अनाज में से मुट्ठी भर-भर के फंकी लगाता हुआ मस्ती से इधर-उधर घूम रहा है ।

"यह कौन दुष्ट यहां घूम रहा है ?"

पर भीम क्यों सुनने लगा था !

"अरे ओ बदमाश ! जवाब दे; नहीं तो अभी तुझे पीसे डालता हूं ।"

भीम ने मानो कुछ सुना ही न हो, इस प्रकार गाड़ी में से दो मुट्ठी अनाज लिया और फंकी लगाकर घूमने लगा ।

"अरे कम्बख्त ! सुनता नहीं ? क्या इस बकासुर को नहीं जानता ?" बकासुर जोर से चिल्लाया ।

भीम ने दोनों मुट्ठी अनाज शान्तिपूर्वक खाया और शांति से पानी पिया ।

इतने में बकासुर ने पीछे से आकर भीम की पीठ पर दो घूंसे जमाये भीम ने बकासुर की तरफ देखा और दोनों लड़ने को तैयार होगये । बकासुर ने भीम के ऊपर पेड़ बरसाने शुरू किये, और भीम एक-एक पेड़ को लेकर तोड़ने लगा । थोड़ी ही देर में भीम ने बक को थकाकर जमीन पर दे मारा और गर्दन दबोचकर मार डाला । मरते समय बकासुर ने जोर से चीखें मारीं, और उसके मुंह से खून की तीन-चार कै हुईं ।

बकासुर की आवाज सुन कर उसकी सेना के सब राक्षस एकदम दौड़ आये, लेकिन यहां देखते हैं तो बकासुर जमीन पर मरा पड़ा था ।

बकासुर के साथी राक्षसों को देखकर भीम ने उनसे कहा—"देखो, तुम्हारे मालिक का यह हाल हुआ है। तुम भी इस शहर में किसी आदमी को भी खाओगे तो जो हाल इसका हुआ है वही तुम्हारा भी होगा, यह समझ लो। इस वन में तुम्हें रहना हो तो खुशी से रहो, लेकिन वे भैंसे और गाड़ी भरके अनाज और आदमी अब तुम लोगों को नहीं मिलेंगे। एकचक्रा के लोग जिस तरह तन-तोड़ मेहनत करके खाते हैं, उसी तरह तुम भी मेहनत करके खाओ । बोलो मंजूर यह है, या तुम सबका भी यही हाल करूं!

बक के साथी एक दूसरे की तरफ देखने लगे, मरे हुए अपने स्वामी को देखा, उसे मारने वाले को देखा और अन्त में दीन होकर बोले—"आप जो-कुछ कहते हैं वह हमें मंजूर है।"

"देखो, इस नगरी के लोग जैसे हैं वैसे ही तुम भी हो, उनसे ऊंचे या नीचे बिलकुल नहीं हो।" भीम ने समझाकर कहा।

"मंजूर है।"

"लुक-छिपकर भी आदमियों को मत खाना।"

"मंजूर।"

"जाओ, अपने वन में सुख से रहो। इस असुर के शरीर को मैं शहर के बड़े दरवाजे में रखनेवाला हूं, ताकि लोग जान लें कि असुरों का त्रास सचमुच ही दूर होगया है । तुम लोगों के त्रास का अन्त लोग अपनी आंखों देख न लें तबतक उनको विश्वास नहीं होगा। उसके बाद फिर अपने मालिक का शव तुम ले जाना चाहो तो भले ही ले जाना।"

बकासुरके साथियोंने जवाब दिया, "जब बकासुर स्वयं ही चले गये,तो फिर उनका निर्जीव शरीर हमारे पास हो या आपके, हमारे लिएयह एक-सा है। इस शरीर में नया प्राण आ सकता होता तब तो हम लोग जरूर इसको सम्हालते, लेकिन यह तो सम्भव नहीं है। ऐसी हालत में उन से मुर्दे को

सम्हाल कर रखने की हमें तो कोई इच्छा नहीं है ।"

सब राक्षस अपने वन को लौट गये और भीमसेन एकचक्रानगरी के दरवाजे पर बकासुर के शव को रखकर चुपचाप घर गया और अपनी मां और भाइयों से सब बात कह सुनाई ।

पाण्डव कहीं एकचक्रामें प्रकट न हो जायं और पापी दुर्योधन कहीं उनका पीछा न करे, इस डर से वे एकचक्रानगरी में से चुपचाप चल दिये । द्रुपद-राज के यहां उनकी लड़की का स्वयंवर था, उसे देखने को वे द्रुपद राजा के राज की ओर चल दिये ।

: ४ :

द्यूत-सभा में प्रतिज्ञा

हस्तिनापुरके राजमहल में जुआ हो रहा था । दांव पर दांव लग रहे थे । बूढ़े भीष्म,द्रोण, कृपाचार्य आदि नीची निगाह किये मूर्तिके समान एक ओर बैठे थे; जुए की जीत के कारण उन्मत्त शकुनि, दुर्योधन और कर्ण एक ओर थे; धधकते हुए ज्वालामुखी के समान क्रुद्ध पाण्डव एक ओर थे; हाथी की सूंड के समान बलवान हाथों से वस्त्र को खींचने वाला दुःशासन और कमल से भी कोमल हाथों से अपनी लाज बचाती सती द्रौपदी एक ओर थे । और इन सबके बीच पड़े हुए हाथी दांत के पासे कौरव-कुल का भविष्य-कथन करते हुए-से पड़े थे मानो अभी जोरों का अट्टहास करके थक गये हों ।

भीम से न रहा गया—"अर्जुन ! युधिष्ठिर ने हमारी सारी धन-दौलत दांव में लगादी, अपने दास-दासियों को दाव पर रक्खा, तुझे और मुझे दांव पर लगाया, माद्री माता के इन पुत्रों को भी दांव पर लगाया और अन्त में खुद अपने को भी दांव पर लगा दिया । यह सब असह्य होते हुए भी सहा जा सकता है । लेकिन युधिष्ठिर ने हमारी पांचाली को दांव पर लगाते हुए जरा भी संकोच न किया, यह मुझसे नहीं सहा जा सकता । ऐसा मन होता है कि जिन हाथों से युधिष्ठिर ने जुआ

खेला उनको आग लगादूँ ! भीम की आंखें लाल हो गईं और उसकी आवाज में भारीपन आगया।

"भाई भीम ! शान्त रहो। तुम पहले तो ऐसे नहीं बोलते थे ! आज ऐसी बातें क्यों कह रहे हो ? युधिष्ठिर हमारे बड़े भाई हैं।" अर्जुन बोला।

"युधिष्ठिर बड़े भाई ! जुआ खेलते हुए शर्म न लाने वाला बड़ा भाई ! जुए के नशे में अपना सब-कुछ खो देने वाला बड़ा भाई ? जुए के दांव में अपने छोटे भाइयों को गुलाम बना देने वाला वह बड़ा भाई ! अपनी धर्मपत्नी को साधारण वस्तु के समान उसे भी निःसंकोच दांव पर लगाने वाला भी बड़ा भाई ! हमारा बड़ा भाई तो वह है जो मां कुन्ती की कोख का नाम करे; जो स्वाभिमान की रक्षा करे और करना सिखावे; जो हमारे सिरों पर छत्र की तरह रहे और हमें अन्धकार में से रास्ता दिखावे ! अर्जुन ! युधिष्ठिर आज बड़े भाई के रूप में अयोग्य साबित हुए हैं। और जिन हाथों से उन्होंने जुआ खेला है उनको अग्नि भी पवित्र कर सकेगी या नहीं, इसमें भी मुझे शक है।" भीम का क्रोध बढ़ता ही गया।

"भाई भीम ! जरा शान्त रहो ! धीरज धरो।"

"शान्त कैसे रहूं ? मैं तो बहुत कोशिश करता हूं, लेकिन पांचाली की यह खुली चोटी मुझे मार रही है। अर्जुन ! कोई भी क्षत्रिय का पुत्र अपनी प्रिय पत्नी की ऐसी दशा देखकर कैसे शान्त रह सकता है ?" भीम की आंखें लाल हो रही थीं।

"भीम ! जरा सब्र करो। ईश्वर पांचाली के सहायक हैं।" अर्जुन ने कहा।

"अरे, पांचाली तो स्वयं अपनी रक्षा करने में समर्थ है। लेकिन हम लोगों का भी तो कुछ फर्ज होता है या नहीं ?"

इधर भीम यह कह रहा था, उधर दुःशासन द्रोपदी का वस्त्र खींचते-खींचते थक गया और बैठ गया और द्रौपदी ने सिर उठाकर उपस्थित जनों को संबोधन करके कहा—"यहां कुरुकुल के जो सब बड़े-

बूढ़े बैठे हुए हैं उनसे मैंने जो प्रश्न किया था उसका जवाब अभी तक मुझे नहीं मिला है । आप मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए । आप सब लोग धर्मप्रवीण हैं, अतः मेरा समाधान कर दें ।"

"द्रौपदी की बात सुनकर भीष्म पितामह जवाब देने को थे कि भीमसेन एकाएक उठा और गरजकर बोला —"इस सभा में बैठे पुतलो ! बेचारी द्रौपदी यह नहीं जानती कि आप सभी बुजुर्ग ही हैं और न यह सभा ही सच्ची सभा है । अगर आप बुजुर्ग होते तो सत्य को समझकर यह जुआ कभी का बन्द कर देते, या सभा छोड़कर चले जाते । द्रुपदराज-पुत्री को क्या मालूम कि आप लोगों का धर्म-ज्ञान केवल पुस्तकों तक ही सीमित है और आप लोग केवल जबान चलाना ही जानते हैं । ऐसे धर्म-ज्ञान से क्षत्रियों को मतलब ? आपमें ऐसा वीर क्षत्रिय मुझे कोई दिखाई नहीं देता, जो तलवार की धार से निकलनेवाले खून से शास्त्र लिखता हो । मैं समझता था कि दुःशासन के पांचाली की चोटी का स्पर्श करते ही हुई कमर पर लटकती हुई आपकी तलवार अपनी म्यानों से निकल पड़ेंगी, लेकिन आज मुझे मालूम हुआ कि आपकी तलवारों पर जंग लगी हुई है और भारतवर्ष से क्षत्रियत्व का खात्मा हो चुका है । कौरव-सभा के निर्वीर्य सदस्यो ! यह न समझें कि आज दुःशासन ने केवल पांचाली की ही चोटी खींची है बल्कि उसने आज सारी भारतमाता की चोटी खींची है । जिस चोटी को आर्य स्त्रियां, हमेशा स्नेह-सिंचन करके सौभाग्य के परमचिह्न के रूप में, पूजती हैं, जिस चोटी में फूलों को गूँथकर आर्य गृहस्थ-जीवन में रसिकता उत्पन्न करते हैं, जिस चोटी को खोलकर आर्य माताएं अपने बालक को दूध पिलाती हों तब उस बालक के दर्शन के लिए देवता भी तरसते हैं, उस चोटी का अपमान सारे भारत की स्त्रियों का अपमान है । सबकी माताओं, पत्नियों, बहनों और स्त्रियों का इसमें अपमान है । आप इसको देखकर भी शान्त बैठे हुए हैं, तभी मैं कहता हूं कि दुष्ट की दुष्टता को देखकर खून खौला देने वाला क्षत्रियत्व आज नहीं रहा !

"लेकिन दुःशासन ! तू याद रख। तू यह न समझना कि भीम तुझे भूल जायगा। आज तो मैं लाचार हूं। लेकिन एक दिन आवेगा जब मैं तेरी छाती को चीरकर उसका खून पीकर अपनी तृप्ति करूंगा। और एक दिन मैं तुझे यह दिखा दूंगा कि पांचाली की चोटी को अपने जीवन की कीमत चुका कर ही स्पर्श किया जा सकता है !"

भीमसेन जोश में बोलता जा रहा था। अर्जुन उसे बार-बार बैठने का इशारा कर रहा था। लेकिन भीम तभी शान्त हुआ जब उसके दिल का गुबार निकल गया। भीम के वाक्य भीष्म और द्रोण के कलेजे में तीर की तरह चुभ रहे थे। लेकिमें दुर्योधन और कर्ण उसका मजाक उड़ा रहे थे। कर्ण से न रहा गया। वह बोला—"इसको खूब बोल लेने दो। बोलकर अपने दिल का गुबार निकाल लेने के बाद यह ठंडा हो जायगा। मुझे इसका कोई डर नहीं है। इसकी अपेक्षा गुमसुम रहने वाला यह अर्जुन ज्यादा खतरनाक है। हमें सावधान रहनाहै तो केवल अर्जुनसे ही।"

\+ + +

पितामह भीष्म ने द्रौपदी के प्रश्नों का यथाशक्ति और यथामति जवाब दिया। लेकिन वह न तो स्पष्ट और न निर्भय। उन्होंने जो उत्तर दिये वे दुर्योधन और कर्ण के अनुकूल थे, और द्रौपदी के दुःखी दिल को और वेदना ही पहुंचा सकते थे।

कर्ण उससे कुछ उत्साहित ही हुआ। वह बोला—"द्रौपदी ! अब पाण्डव तेरे पति नहीं रहे; इसलिए अपने लिए कोई दूसरा पति चुन ले।"

कर्ण की बात सुनकर भीम क्रोध के मारे एकदम आग-बबूला होउठा। इतने में दुर्योधन ने अपनी दाहिनी जांघ खोली और उसपर बैठने का इशारा करते हुए द्रौपदी के साथ अश्लील मजाक किया।

तब तो भीमसेनसे न रह गया। वह कड़क उठा—"अबे ओ अन्धे के लड़के ! पापी दुर्योधन ! द्रौपदी का तो इस समय ईश्वर ही रक्षक है। पर तेरी इन जांघों पर बैठने के लिए मेरी इस गदा ने ही जन्म लिया है। कौरव सभा के नपुंसक सभासदो ! मैं भीमसेन आज तुम सबके

सामने प्रतिज्ञा करता हूं कि एक दिन मैं दुर्योधन की इस जांघ को तोड़ूंगा और जो दुर्योधन इस सभामें जुए में जीतकर अपना सिर ऊंचा किये बैठा है उसका सिर अपने पैर की ठोकर से उड़ाऊंगा। स्वर्ग के देवताओ! अगर मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी न करूं तो तुम मुझे घोर नरक में डालना।"

भीमसेन के वचनों को सुनकर सारी सभा में सन्नाटा छा गया। चारों ओर इन शब्दों की मानो प्रतिध्वनि होने लगी और सभा-भवन की दीवारों को छेदकर भीम के वचन ठेठ धृतराष्ट्र और गांधारी तक जापहुंचे।

: ५ :

भीमसेन का क्षात्र-धर्म

"अर्जुन! मैं क्या करूं? मैं बहुत कोशिश करती हूँ, लेकिन फिर भी भीमसेन को किसी तरह शान्ति नहीं मिलती। रोज आधी-आधी रात तक बिस्तर पर पड़े-पड़े जागते रहते हैं, और कभी-कभी तो नींद में भी रोने लगते हैं।" द्रौपदी बोली।

"भीम की ऐसी हालत रही तो वह बीमार पड़ जायगा।" अर्जुन चिन्तित होकर बोला।

"बात तो ठीक है। इस लम्बे वनवास से और महाराज युधिष्ठिर के जब-तब के क्षमा के उपदेश से उन्हे चोट लगती है।" पांचाली बोली।

"यही तो बात है। सिंह को अगर पिंजरे में बन्द करके रक्खो तो वह सिसक-सिसक कर मर जाता है।" अर्जुन ने कहा।

अर्जुन!" द्रौपदी बोली; "कल रात भीमसेन नींद में एकदम उठ बैठे और कहने लगे—'पाञ्चाली! मेरी गदा तो ले आ। इस दुष्ट की जांघ को तोड़ डालूं।' और जब जगे, होश आयो। व मैं दिखाई दी, तो एकदम रो पड़े।"

"देवी! उसे अगर कोई शान्त कर सकता है तो केवल तुम ही।" अर्जुन बोला।

"देखो न, वह उस पत्थर पर अपने घुटनों में सिर डाले बैठे हैं !" द्रोपदी बोली ।

"अब तो बनवास की अवधि को पूरा होने में एक महीना भी नहीं रहा । फिर भीमसेन को ऐसा क्यों होता है ?" अर्जुन परेशानी के साथ सोचने लगा ।

दोनों इस प्रकार बातें कर रहे थे कि इतने में भीमसेन भी वहां आगया । उसका पहाड़ जैसा शरीर ढीला पड़ गया था; आंखों में नींद की खुमारी थी, नाक में से गरम सांस निकल रही थी, पैर अस्त-व्यस्त पड रहे थे । वह किसी गहरे विचार में पड़ा हो, ऐसा दिखाई देता था ।

"क्यों, भाई भीमसेन ! तबीयत तो ठीक है न ?" अर्जुन ने पूछा ।

भीमसेन कोई जवाब दिये बिना उसकी तरफ देखने लगा ।

"भीमसेन ! बोलते क्यों नहीं ? तबीयत तो ठीक है ? द्रौपदी बोली ।

"भीमसेन की तबीयत ठीक है या नहीं, यह मत सोचो । धर्मराज की तबीयत के हाल-चाल पूछो ? भीम बोला ।

"यों उलटा जवाब क्यों देते हो, भाई ! अर्जुन ने कहा ।

'अर्जुन ! ऐसा जवाब न दूं तो कैसा दूं ? जिसकी जिन्दगी का सारा रस सूख गया है, वह ऐसा जवाब न दे तो कैसा दे ?" भीमसेन दीन होकर बोला ।

"प्यारे भीमसेन ! मैं तुम पाचों भाइयों की धर्मपत्नी हूं, पर मेरे हृदय की बातों को पूरा करनेवाले तो तुम ही एक हो । भरी सभा में जब मेरी लाज लुट रही थी, तब मेरी पीड़ा का अकेले तुम्हीं ने अनुभव किया था । इसी वनवास में जयद्रथ ने जब मुझपर कुदृष्टि डाली, तब इन अर्जुन के साथ तुम्हीं जयद्रथ के पीछे दौड़े थे । मैंने जब एक नवोढ़ा स्त्री के समान सोने के कमल की इच्छा की, तब तुमने ही जान को खतरे में डालकर भी कुबेर के तालाब में से उसे लाकर चैन लिया । इस वन में भी जब मेरा हृदय व्याकुल हो जाता है तब तुम्हीं अकेले मेरे हृदय को सांत्वना देते हो । भीमसेन ! पिछले कुछ दिनों से तुम बहुत अस्वस्थ

दिखाई दे रहे हो। यह देखकर मैं बहुत दुःखी हो जाती हूँ और मेरा शरीर एकदम सुस्त पड़ जाता है। अब जब वनवास के दिन ज्यों-त्यों पूरे होने को आ रहे हैं, तुमको इस प्रकार देखकर मैं कैसे धीरज धरूं? द्रौपदी ने भीमसेन का हाथ पकड़कर अपने पास बैठाया और उसके मुंह पर अपना हाथ फेरा।

"भीम! पांचाली ठीक कह रही है।" अर्जुन ने कहा।

"यह तो ठीक ही कह रही है। लेकिन हमारे कुटुम्ब में तो सत्यासत्य का कांटा अकेले धर्मराज के ही हाथ में है न?" भीम अकुला कर बोला।

"भीमसेन! ऐसा कहकर भाईसाहब को क्यों व्यर्थ में पीड़ा पहुँचाते हो? अब तो बारह वर्ष पूरे ही होने आये; एक वर्ष के अज्ञातवास के बाद तो फिर हम लोग वापस हस्तिनापुर में पहुंचेंगे। अर्जुन बोला।

"अरे भाई, उसके पहिले तो फिर दूसरे बारह वर्ष वन में बिताने का नम्बर आ जायगा। अपना विचार प्रकट करने के पहले धर्मराज से जाकर तो पूछ आओ।" भीमसेन बोला।

"भीमसेन! तुम्हारा कथन ठीक नहीं। इस तेरहवें वर्ष के अन्त में कोई तुम्हारे साथ न होगा। अकेली द्रौपदी ही तुम्हारे साथ होगी, यह समझ लो।" द्रौपदी बोली।

"पांचाली! अबकी जुए में तो पहले तुम्हीं को दांव पर रक्खा जायगा, जिससे शास्त्रियों को शास्त्रार्थ भी न करना पड़े। तुम जाकर पहले अपने धर्मराज से जाकर पूछ आओ, फिर मुझसे बात करना।" भीम की आखों से क्रोध की लपटें दिखाई देने लगीं।

"यह सब पूछा-पुछाया है! यह लो महाराज भी इसी तरफ आ रहे हैं।" पांचाली बोली।

"वहां आराम से बैठे हरिण के बच्चों को हरी-हरी दूब खिला रहे थे, यहां हमारी जली-कटी सुनने क्यों आये?" भीम ने कहा।

"आइए भाई साहब!" अर्जुन ने नमस्कार किया। द्रौपदी ने युधिष्ठिर के लिए आसन बिछाया और वह उस पर बैठ गये।

"क्यों भाई भीम ! आज तो तबीयत ठीक है ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"रोज से तो आज कुछ ठीक मालूम होती है।" अर्जुन बोला।

"मन को खूब शान्त रखना चाहिए। मन की समतौलता को जरा भी नहीं खोना चाहिए। मानव-जीवन में यही एक बड़ा पुरुषार्थ है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"इसीलिए तो दुर्योधन ने हम लोगों को जंगल में भेज रक्खा है।" भीम ने कठोरता के साथ कहा।

"यह बड़ा-सा जंगल, जंगल के बड़े-बड़े वृक्ष, उस बादल के साथ बातें करनेवाले ये पहाड़, विश्वास से निर्भय होकर चलनेवाले ये पशु, वृक्षों पर किल्लोल करनेवाले ये पक्षी, यह अनन्त आकाश, पहाड़ की गोदी को चीरकर निकलती हुई नदियां, नदी के दोनों किनारों पर कूदने वाले ये हरिण, इन सब के बीच निवास करना तो किसी सम्राट् के भाग्य में भी नहीं होता।" युधिष्ठिर बोले।

"ठीक है महाराज !" भीमसेन ने कहा, और यह कहते-कहते वह घुटने टालकर बैठ गया और बोला—"महाराज युधिष्ठिर ! हस्तिनापुर में किसी कुशल वैद्य से आपके मस्तिष्क की परीक्षा करा लेने से दुर्योधन और शकुनि को यह निश्चय हो जायगा कि हमें जंगल भेजने का उनका जो उद्देश्य था, वह पूरी तरह सिद्ध होगया है।"

"भीम, ऐसा नहीं कहना चाहिए !" अर्जुन ने कहा।

"श्रीकृष्ण, आपकी बात है बिलकुल ठीक।" भीम इस प्रकार बोला मानो कोई बात उसे याद आ रही हो, "दूसरे लोग बिलकुल समझ न सके ऐसी बहुत-सी बातें आप भविष्य के गर्भ में जाकर देख सकते हैं, इसीलिए आप ईश्वर हैं।,

"भीमसेन, तुम्हारे कहने का मतलब मैं नहीं समझ सकी।" पांचाली बोली।

"हम लोगों को कौरवों ने वनवास दिया," भीमसेन कहने लगा.

"उसके बाद तुरन्त ही श्रीकृष्ण हम लोगों से मिलने के लिए वन में आये थे, वह प्रसंग याद है न ?"

"हां, आये तो थे," अर्जुन ने जवाब दिया।

उस समय एक बार श्रीकृष्ण भोजन करके बिछौने पर लेट रहे थे, और सात्यकि पास बैठा हुआ था। सात्यकि ने श्रीकृष्ण से पूछा—"महाराज, इन पाण्डवों को वन में भेजकर कौरव कौनसा लाभ प्राप्त करना चाहते हैं ? मुझे तो ऐसा लगता है कि पांडव जब वनवास से वापस लौटेंगे तब कौरवों के प्रति ज्यादा वैरभाव लेकर ही आवेंगे। शकुनि जैसे चालाक आदमी ने भी अपने हिसाब में कुछ गलती की है, ऐसा मालूम होता है।"

"ऐसी चर्चा हुई थी ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"हां, मैं उस समय पास ही के कमरे में था।" भीमसेन ने कहा।

"फिर श्रीकृष्ण ने क्या कहा ?" अर्जुन ने पूछा।

"फिर श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा—'सात्यकि, तू अभी राजनीति के दाव-पेच में होशियार नहीं हुआ है। जिस युक्ति से यह वनवास दिया गया है, अगर वह सफल होगई तब तो फिर उनकी चांदी है। शकुनि ने यह हिसाब लगाया होगा कि पांडवों को बारह वर्ष के लम्बे समय तक वनवास दे देने से उनका क्षात्र-धर्म जड़-मूल से नष्ट हो जायगा। मनुष्य का क्षात्रतेज चाहे जैसा उग्र हो तो भी उस तेज को कायम रखने और उसका विकास करने के लिए उसके आसपास अनुकूल वातावरण की जरूरत है। पांडव इन्द्रप्रस्थ या हस्तिनापुर में रहें तो उन्हें हमेशा यही लगेगा कि हम पांडु के पुत्र हैं और संसार के स्वामी बनकर उस पर राज्य करने के लिए हमने जन्म लिया है। राजधानी में हर रोज उनके कानों पर उनके पूर्वजों के पराक्रमों की बातें आती रहेंगी, रोज कुछ घण्टे रथ चलाने, घोड़ा दौड़ाने, शस्त्रास्त्र चलाने आदि युद्ध-कलाओं में लगे रहेंगे, हमेशा ऐसी ही योजनाओं पर विचार करना पड़ेगा कि आज महाराज अमक देश को जीतेंगे, रोज एक-

दो छोटे-मोटे राजाओं के मुकुट युधिष्ठिर के चरणों में झुकेंगे, रोज देश-विदेश के राज्यों में कोई-न-कोई उथल-पुथल मची रहती होगी, और रोज राजकोष में अपार धन आकर इकट्ठा होता होगा, तो क्षत्रियपुत्र का शरीर और मन स्वाभाविक रूप से अपने क्षात्रतेज का स्मरण करेगा और अनायास ही पोषण मिलता रहेगा। वनवास ऐसे क्षात्र-जीवन के लिए अनुकूल नहीं है। वनवास की हवा ब्राह्मण-जीवन की हवा है। वनवास में युधिष्ठिर को छोड़कर दूसरे चारों भाई तो बिलकुल निस्तेज हो जानेवाले हैं, और उसमें भीम तो खास करके।' श्रीकृष्ण ने सात्यकि से इस प्रकार जो कहा था वह सब मुझे अब सच होता जान पड़ता है। महाराज शकुनि की गणना सच निकल जाय तो फिर क्या कहना है। देवी, अर्जुन! बस, फिर तो सब खत्म ही समझो।" भीम ने एक ठण्डी सांस ली।

"भीमसेन, तुम तो बड़े उतावले हो रहे हो। भाईसाहब जो कहते हैं उसे भी तो जरा समझ लो!" अर्जुन ने अधीर होकर कहा।

"भाईसाहब क्या कहते हैं?" भीम ने गुस्से से पूछा।

"मैं तो यह कहता हूँ कि मन को समतोल रक्खो और जिस समय जो धर्म लगे उसके अनुसार काम करो।" युधिष्ठिर बोले।

"अच्छी बात है। यह मन का समतोलपन भी कर लिया। लेकिन, बतलाइये, अब वनवास के अन्त में हमारा क्या धर्म है?" भीम ने पूछा।

"वनवास के अन्त में तो धर्म लड़ने का ही है। इसमे और अब पूछना क्या बाकी रह गया?" द्रौपदी बोली।

"वनवास के अन्त में हमें दुर्योधन से अपने राज्य की मांग करनी चाहिये।" युधिष्ठिर बोले।

"मांग किस बात की?" पांचाली बोल उठी।

"अपने हकों की।" युधिष्ठिर बोले।

"दुर्योधन हमारी मांग मंजूर करेगा ? दुनिया में किसी ने शत्रु की मांग स्वीकार की है ?" भीम ने पूछा ।

"मंजूर क्यों नहीं करेगा ? हमारी मांग ठीक हो, प्रतिष्ठित पुरुष की मार्फत उसे पेश किया जाय, और भीष्म, द्रोण जैसे कुरुवृद्ध दुर्योधन की सभा में मौजूद हों, तो हमारी मांग क्यों न मंजूर होगी, यह बात मेरी समझ में नहीं आती।" युधिष्ठिर ने कहा।

"महाराज, मुझे माफ कीजिये। पर दुनिया में किसी ने किसी निर्वीय की मांग को मंजूर किया हो, ऐसा सुना नहीं गया। हमारी मांग के पीछे अगर हमारी तलवारों का बल होगा तो त्रैलोक्यपति को भी उसे मंजूर करना पड़ेगा। नहीं तो ऐसी कितनी ही मांगों को दुनिया के सम्राट् घोलकर पी गये हैं, यह क्या आप नहीं जानते ?" द्रौपदी भी जोश में आगई।

"महाराज ! अब भी अगर मांग ही करनी हो, तो भीम और अर्जुन अपनी गदा और अपने गाण्डीव के द्वारा करेंगे।" भीम बोला।

"भीमसेन ! जरा शांति से बोलो।" अर्जुन ने कहा।

"शांति से कैसे बोलूं ? अन्दर से जब हृदय जल रहा हो तब फिर बाहर की शांति कहां से लाऊं ? तुम सब लोगों ने इस वनवास में शांति सीख ली होगी, लेकिन मैंने इस वनवास में सब जगह सांप और नेवलों की लड़ाई ही देखी है। इसलिए मैं तो शांति सीख ही नहीं सका।" भीम बोला।

"भीमसेन का कहना बिलकुल ठीक है।" पाञ्चाली ने कहा।

"देवी पांचाली ! भीम जो कुछ कहता है उसका अर्थ मैं समझता हूं। लेकिन जिस धर्मबुद्धि से आजतक हम लोग चलते आये हैं उसीके अनुसार आगे भी चलेंगे तो विजय अन्त में हमारी ही है।" युधिष्ठिर बोले।

"महाराज ! मुझे माफ कीजिये। अब मुझे आपकी धर्मबुद्धि में विश्वास नहीं रहा।" भीम ने कहा।

"अगर ऐसी बात है, तो हम श्रीकृष्ण की सलाह लेंगे।" युधिष्ठिर ने कहा।

"यह ठीक है। लेकिन अब तो अगर श्रीकृष्ण भी ना कहें तो भी मैं तो युद्ध ही पसन्द करूंगी।" पांचाली बोली।

"भाई साहब!" भीम से न रहा गया --"आप धर्म-कर्म की बातें तो कर रहे हैं, लेकिन इस पाचाली की चोटी की तरफ भी देखा है! यह चोटी क्या कह रही है, यह आपको सुनाई देता है? आपको मालूम है कि यह चोटी दुःशासन और दुर्योधन के खून के लिए तरस रही है? इस अर्जुन का अंगूठा आपने देखा है? यह हाथ गांडीव की टंकार करने के लिए ही पैदा हुआ है, यह आपको मालूम है? उस वृक्ष के ऊपर बैठे हुए नकुल और सहदेव बांस की बासुरी बजा रहे हैं, वह आपको सुनाई देती है? बेचारे बासुरी न बजावें तो क्या करें! संग्राम के शंखनाद का अवसर तो आपने छीन लिया, तब और करें भी तो क्या? महाराज! अभी भी आपकी आंखें खुलती हैं या नहीं?" भीम ने युधिष्ठिर के हृदय में चोट की।

"महाराज! भीमसेन ठीक कहते हैं। वनवास के अन्त में तो कौरवों के साथ अब युद्ध ही हो सकता है।" द्रौपदी उत्साह से मानो उछल रही हो।

"देवी! युद्ध के परिणामों का भी कुछ ख्याल किया है?" युधिष्ठिर बोले।

"परिणाम का ख्याल तो परिणाम के आने के बाद देखा जायगा। आज तो सिर्फ एक ही खयाल सामने है। मेरे पतियों को वनवास देनेवाले और भरी सभा में मेरी बेइज्जती करनेवाले को युद्ध के सिवाय दूसरा जवाब हो ही नहीं सकता। परिणामों के खयाल का काम बनियों को सौंपिये। हम तो अपने क्षात्र-धर्म को ही सम्भालें।" पाचाली बोली।

"क्षात्र-धर्म के थोथे जोश में क्या व्यर्थ ही बरबाद हो जायं?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"बनियों की तरह आगे-पीछे का जोड़-तोड़ लगाकर जीना क्षत्रियों के लिए मौत है और क्षात्र-धर्म का पालन करते हुए मरना भी पड़े तो उसमें जीवन है।" पांचाली बोली।

चर्चा में काफी गर्मी आ गई थी, इसलिए अर्जुन ने बीच में पड़कर कहा—"भाईसाहब! भीमसेन और देवी पांचाली जो कहते हैं वह विचार करने योग्य तो है ही। और आप जो कहते हैं उसके अनुसार हमें धर्मबुद्धि से विचार करके भी चलना है, लेकिन वह धर्मबुद्धि अगर हमें कायरता की ओर ले जाती हो तो हम लोगों की मौत ही होगी। भीमसेन! देवी पांचाली! ये प्रश्न बहुत विचारने योग्य हैं, इसलिए इनका निर्णय इस समय हम नहीं कर सकेंगे। और किसी समय स्वस्थ मन से हम लोग इसपर विचार करेंगे। अभी अज्ञातवास का पूरा एक वर्ष बाकी है, इसलिए अभी इसकी कोई जल्दी नहीं है।"

"जल्दी तो है ही। क्योंकि एक बार अन्तिम निश्चय हो जाय तो अज्ञातवास के बीच और उसके बाद फिर दूसरे किसी रास्ते के विचार का सवाल ही न रहे और हम अपनी सारी शक्ति को एक ही रास्ते पर केन्द्रित करें।" द्रौपदी ने कहा।

"यह भी ठीक है। अब थोड़े ही दिनों में श्रीकृष्ण इधर आनेवाले हैं। महाराज द्रुपद और धृष्टद्युम्न भी आवेंगे। सबके साथ बातचीत और सलाह-मशविरा करके हम लोग इसका निर्णय करेंगे।" अर्जुन ने विवाद को समाप्त किया।

"तो यही ठीक है।" पांचाली बोली, "भीमसेन! शाम होने में अब थोड़ी ही देर है, इसलिए चलो हम लोग जरा उन पहाड़ों की तरफ एक चक्कर लगा आयें।"

पांचाली और भीमसेन पास वाले पहाड़ों की तरफ चल दिये। महाराज युधिष्ठिर नकुल और सहदेव जिधर बंशी बजा रहे थे उधर गये और अर्जुन धनुष-बाण लेकर पास के वन में चला गया।

: ९ :

सैरन्ध्री का गन्धर्व

विराट राजा की रानी का नाम सुरेष्णा था। कीचक उसका भाई था और कीचक विराट राजा की सेना का सेनापति तथा पुलिस-विभाग का प्रधान भी था। कीचक के सौ भाई भी विराट-राज में और-और जगह था।

एक बार सुरेष्णा और कीचक महल में बैठे बात-चीत कर रहे थे।

"भाई कीचक !" रानी बोली, "उसे कितनी बार समझाया, लेकिन मानती ही नहीं। मैं कहती हूं कि 'भैय्या को खाना दे आ; भय्या के लिए यह तेल-इत्र उन्हें दे आ। लेकिन वह तो खिसकती ही नहीं।"

"खैर ! देखा जायगा।" कीचक बोला।

"पर तू उसके लक्षण तो देख। उस का हौसला तो राजा के पलंग पर बैठने का है ! लेकिन मुझे वह नहीं पहचानती। मैंने तो जिस दिन वह आई है उसी दिन उसका रूप देखकर कह दिया था, कि 'गजब की सुन्दर है तू बाबा, तेरे लिए मेरे यहां गुंजाइश नहीं है ;' पर उसने आजीजी से कहा कि रानी जी, मेरे लिए चिन्ता न करें। पांच गन्धर्व मेरी रक्षा करते हैं, इसलिए राजा भी मुझपर नजर नहीं डाल सकते।' लेकिन अब तो राजा के आते ही वह न जाने किधर से दौड़ आती है, और बृहन्नला के साथ तो न जाने क्या फुसर-फुसर बातें करती रहती है।" रानी ने कहा।

"बहन, तू फिक्र न कर।" कीचक बोला।

"पर फिक्र कबतक नहीं करूंगी ? पद्मिनी जैसी और स्त्रियां तो तेरा नाम सुनते ही वश हो जाती हैं, और यह कलमुहीं इतनी घमंडी है कि लाख समझाने पर भी राजी नहीं होती। इसे अपने रूप का जो गर्व है उसे नष्ट करना होगा।" रानी ने होंठ चबाते हुए कहा।

"कल भरी सभा में मैंने उसको चोटी पकड़कर घसीट डाला था।" कीचक बोला।

"मुझे मालूम हो गया था। लेकिन उसे बचाने उसके गधर्व पति आये या नहीं?" रानी ने पूछा।

"कौन आता है। कहीं हो भी कोई!" कीचक ने कहा।

"भैय्या! तूने उसकी शेखी किरकिरी कर दी, यह अच्छा किया। राजा भी वहीं थे न?"

"हा, उनके सामने ही मैंने उसे धर पटका।" कीचक ने बताया।

"राजा इसपर क्या बोले?" रानी ने पूछा।

"वह क्या कहते? और उन के कहने जैसा रहा भी क्या है! उन का काम तो सिर्फ गद्दी पर बैठे रहना है, राज्य-संचालन का सारा भार तो मेरे इन बलिष्ठ कन्धों पर हा है।" कोचक ने छाती तानते हुए कहा।

"शाबाश भैय्या! अब इस कलमुंही से तू एक बार हमेशा के लिए निपट ले तो मुझे जरा शान्ति मिले।" रानी बोली।

"पर बहन, एक बात है। और बहुत ही गुप्त बात, किसी से कहना मत।" कीचक बोला।

"मैं किस से कहूंगी? मेरा विश्वास नहीं है?" रानी ने कहा।

"विश्वास तो बहुत है। लेकिन बात कुछ ऐसी ही है, इसलिए आग्रह-पूर्वक गुप्त रखने के लिए कहता हूं।" कीचक ने समझाया।

"मैं किसी से कहने वाली नहीं हूं!" रानी बोली।

"तो सुन! जब कल मैंने सैरन्ध्री को भरी सभा में घसीटा था, तो उसके बाद आज सुबह वह मेरे पास आई थी।" कीचक बोला।

"अच्छा! तो बिना मेरे कहे ही वह अपने आप तेरे पास आई?" रानी बोली।

"इतनी हो जाने के बाद भी न आवेगी?"

"कैसे आई थी?" रानी ने पूछा

चुपचाप आकर मुझे कहने लगी—"देखो, मैं तुम्हारे पास आने

को राजी हूं, लेकिन मेरे गंधर्व पति यह जानने न पावें, इसीलिए आज रात को हम नई संगीतशाला में मिलेंगे। यह बात तुम किसी-से न कहना। अगर मेरे गंधर्व पति जान जावेंगे तो बड़ा अनर्थ हो जायगा।"

"तो अब आई यह कलमुंही ठिकाने पर! पहले तो रोज 'गंधर्व पति!' 'गंधर्व पति!' कहकर मुझे डराती रहती थी। गंधर्व कैसे होते हैं? गंधर्व होते उसकी ऐसी दशा होती?" रानी खुश होकर कहने लगी।

"बहन, यह तो मैं पहले से ही जानता था। हम पुरुष लोग स्त्रियों को उनके पैरो पर से ही परख लेते हैं। लेकिन यह सैरन्ध्री तो तुम जैसा कहती हो वैसी नहीं लगती। आखों में कुलटा स्त्रियों जैसी चपलता नहीं है। इसलिए अगर मान जाय तो मैं तो उसे अपने अन्तःपुर में रखने की सोचता हूं।" कीचक ने अपने मन की बात कही।

"भैय्या! कितने ही आदमी इसने किये होंगे और कितने ही करेगी यह। आज तो तेरा अपना स्वार्थ है न, इस लिए तुझे यह अच्छी दिखाई दे रही है। मेरी तरफ से तो तू इसे यहासे ले जाय तो बला टले मेरे सिर की। फिर मुझे राजा विराट के लिए कोई डर न रहे।" रानी ने कहा।

"तो आज रात को संगीतशाला में उसे भेजना। साथ में और कोई न हो।" कीचक जाते-जाते बोला।

"अच्छी तरह बनाव-शृंगार कराके भेजूंगी।" रानी ने कहा।

"नहीं, नहीं; साधारण वेश में ही। नहीं तो व्यर्थ ही किसी को शंका हो जायगी।" कीचक ने आग्रहपूर्वक जताया।

"हां, यह भी ठीक है। तो कलमुंही को एक बार किसी तरह अपने बस में करले। फिर तो बस बेड़ा पार है। अच्छा भय्या, चल दिया? ईश्वर तेरा भला करे।" रानी कीचक को विदा करने के लिए खड़ी हुई। कीचक अपने महल की ओर चल दिया।

+ + +

अन्धेरी रात थी। नई संगीतशाला और उसके आसपास के दीये

बुझा दिये गये थे। शाला के बाहर के रास्तों पर पहरा देने वाले बीच-बीच में गश्त लगाकर अपनी नौकरी बजा रहे थे। संगीतशाला के पलङ्ग पर लेटा हुआ भीमसेन विराट् राजा के साले की राह देख रहा था।

रात के नौ-दस का समय होगा कि विराट राजा के साले, सेनापति और पुलिस के प्रधान कीचक ने संगीत-शाला में प्रवेश किया। आज उसकी खुशी का ठिकाना नहीं था, क्योंकि आज उसकी इच्छित वासना-तृप्ति का अवसर आया था। सैरन्ध्री से भेंटने के लिए आज उसने अपने को खूब सजाया था। उसके कपड़ों में से सुगन्ध की लहरें उठ रही थीं। उसका मुंह सुवासित हो रहा था। आंखों में गहरा अन्जन लगा हुआ था, और शराब ने मानो उसके शरीर में नवचेतन भर दिया था। सिवा सैरन्ध्री के उसे और कुछ दिखाई ही नहीं देता था।

कीचक संगीतशाला में दाखिल हुआ। और दरवाजा अंदर से बन्द किया। दीया तो वहाँ था नहीं, इसलिए काम के वशीभूत होकर अँधेरे में टटोलते-टटोलते वह पलङ्ग की ओर गया।

पलङ्ग के पास आकर भीम के शरीर पर हाथ फेरते हुए उसने कहा—"प्यारी सैरन्ध्री! आज मेरा जीवन धन्य हुआ। मेरा घर, मेरे दास-दासी, मेरा धन, यह सब आज मैं तुझे अर्पण करता हूँ।"

पलङ्ग पर पड़े ही पड़े भीमसेन स्त्रियों की-सी आवाज़ में बोला—"राज-कुमार कीचक! ईश्वर का उपकार मानो कि आज हम लोग मिले। तुम्हारा रूप देखकर किसे मोह न होगा?"

"प्यारी सैरन्ध्री! बैठो तो सही! यह कीचक कामशास्त्र में कितना निपुण है, आज तुम्हें मालूम होगा।" कहकर कीचक ने भी उसके ऊपर का कपड़ा उठाया कि इतने में भीम छलांग मार कर पलङ्ग पर से नीचे कूद पड़ा और कीचक का गला पकड़ लिया।

"दुष्ट कीचक! मुझे कामशास्त्र सिखाने से पहले तो तुझे मृत्युशास्त्र पढ़ना पड़ेगा।" भीम गरजकर बोला।

"सैरन्ध्री, सैरन्ध्री! अरे तू कौन है?" कीचक घबरा गया।

"और दूसरा कौन होगा ? सैरेन्ध्री तो है सुरेष्णा के महल में ।" यह कहते हुए भीम ने कीचक को जमीन पर धर पटका ।

कीचक भी मजबूत था । उस कमरे में दोनों वीरों का युद्ध होने लगा और कीचक ने भी भीम को अच्छी तरह थका दिया । पर कहां भीम और कहां कीचक ? भीम ने कीचक के सारे शरीर को उठाकर जमीन पर दे मारा और उसकी छाती पर घुटने टेक कर उसका गला पकड़ते हुए कहा—"पापी कीचक ! पहचाना मुझे ?"

"नहीं ।" बड़ी मुश्किल से कीचक ने कहा ।

"मैं सैरन्ध्री का गन्धर्व पति अब तू ईश्वर को या जिस किसी को चाहे याद करले । मैं अभी ही तुझे यमलोक भेजता हूं ।" भीम बोला ।

"गन्धर्वराज ! मारना हो तो जल्दी ही मार डालो । मुझे बड़ी पीड़ा हो रही है ।" कीचक ने कहा ।

"तो ले मैं तेरा गला जरा ढीला किये देता हूं । तुझे कुछ कहना हो तो कहले ।" भीम बोला ।

"गला ढीला कर देने से तो मेरा दुःख और बढ़ जायगा । मेरी आखों के सामने तो कितनी ही स्त्रिया सिर के बालों को खोलकर और बड़ी-बड़ी आखे दिखाकर मुझे डरा रही हैं । गन्धर्वराज ! विराट की इन स्त्रियों पर अत्याचार करते समय मुझे नहीं मालूम था कि अन्त समय मुझे वे इस प्रकार भयभीत करेंगी । गन्धर्वराज ! आखे बन्द कर लेने के बाद भी वे खुली-सी जान पड़ती हैं और मेरे शरीर में पसीना आरहा है । विराट की माताओ और बेटियो ! तुम शान्त हो जाओ । इस गन्धर्व ने तुम्हारा बदला ले लिया है ।" कीचक पागल-सा बड़बड़ाने लगा ।

"कीचक ! यहां तो कोई नहीं है ।"

"है कैसे नहीं । वह देखो वहा खड़ी है । वही तो है । मैंने आधी रात के समय, जब वह अपने बालक को दूध पिला रही थी, उसके घर से उसका अपहरण करवाया था । हा, ठीक वही है । बहन ! तू अपनी आखें बन्द करले । मुझे डर मालूम होता है ।"

"कीचक ! अब जल्दी कर, रात बीत रही है।" भीम बोला। "गन्धर्व-राज ! अब मुझे जल्दी मार डालो, ताकि मैं इस पीड़ा से मुक्त हो जाऊं। मुझसे यह सब देखा नहीं जाता।" कीचक ने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

"लेकिन तुझे कुछ कहना था न ?" भीम बोला।

"हां, कहना तो बहुत कुछ है। राजाओं के मेरे जैसे साले अगर कुछ कहने लगें तो पुराण भर जायं। लेकिन तुम इतना सब कहां सुनने बैठोगे !" कीचक बोला।

"तो भी इधर-उधर की बातें करता है, उसके बजाय तो जो कहना चाहता हो वही कह डाल न !" भीम ने कहा।

"मैं इधर-उधर की कोई बात नहीं करता, लेकिन न जाने क्यों अपने-आप मुंह से निकली जा रही हैं। विराट की मां-बेटियां गईं ?"

"कौन ? यहां तो कोई नहीं है।"

"तो गन्धर्वराज, सुनो ! तुम अपने आर्यावर्त्त के राजाओं को कहलाना कि कोई भी राजा अपने राज्य में अपने साले को राज्य का अधिकारी न बनावे। राज्य की रानियों से कहलाना कि अगर वे अपने भाई का भला चाहती हों तो उसे अपने राज्य में न रक्खें। गंधर्वराज ! सच बात बताता हूं। मैं आज जो मर रहा हूँ, वह अपनी बहन के पापों के कारण। सुरेष्णा ने अगर मुझे इतना न चढ़ाया होता तो मैं शांति से विराट में अपना गुजर करता और बुढ़ापे में मरता। लेकिन मेरी बहन ने मुझे उलटे रास्ते चलाया और मैं उस ओर चल पड़ा। गन्धर्वराज ! विराट राजा को मेरा यह अंतिम प्रणाम पहुंचाना ! उस बेचारे को हम दोनों भाई-बहनों ने कमजोर बना डाला है। भगवान् उनका भला करें। सुरेष्णा ! पापी बहन ! तुझे क्या कहूँ ? राजमहलों की सफेद दीवारों के पीछे कितने काले काम होते रहते हैं, उनका लोगों को पता भी नहीं चलता। अच्छा विराट के सारे नगर को, विराट की सेना को, विराट के पुलिसवालों को और सैरन्ध्री को भी मेरा अन्तिम नमस्कार ! सैरन्ध्री !

क्षमा करना मुझे। अगले जन्म में मालूम होता है मैं शूकर योनि में जन्म लूंगा। लेकिन अगर किसी पुण्य से मानव-योनि में जन्म लूं, तो भगवान्, मुझे सैरन्ध्री के पेट से पैदा करना—यही तुमसे प्रार्थना है।" कीचक ने बोलना बन्द किया।

"तेरे जैसा पुत्र पैदा करने पर सैरन्ध्री के भाग्य का क्या कहना!" भीमसेन से न रहा गया।

कीचक के चुप होते ही भीमसेन ने उसके सिर में इतने जोर से घूंसा मारा कि उसका सिर धड़ मे घुस गया। इसी तरह उसके हाथ और पैरों को भी धड़ के अन्दर घुसा दिया और कीचक के सारे शरीर को मांस की एक गेंद जैसा बना कर और उसे वहीं लुढ़काकर भीमसेन वहां से पाकशाला में चला आया।

बाद में जब कीचक की मृत्यु की खबर मिली और कीचक के भाई उसमें सैरन्ध्री का ही दोष बताकर सैरन्ध्री को कीचक के साथ ही एक चिता में जला देने को तैयार हुए तब भीमसेन गंधर्वों का विचित्र वेश पहनकर श्मशान में आया और सैरन्ध्री को वहां से छुड़ाकर रानी के महल में पहुँचा दिया।

: ७ :

रुधिर-पान

कौरव-पांडवों का युद्ध शुरू हुए आज सत्रह दिन हो गये। दुर्योधन की सेना के स्तम्भ-रूप भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य तो कभी के रण-भूमि में सो गये थे। सिन्धुराज जयद्रथ कौरवों की एकमात्र बहन दुःशला को रोती हुई छोड़कर मृत्यु के मुख में चले गये थे। पांडवों की तरफ के भी कितने ही महारथी स्वर्ग सिधार गये थे। वीर अभिमन्यु छः महारथियों से टक्कर लेते-लेते वीर-गति प्राप्त कर चुका था। भीमसेन का राक्षस पुत्र घटोत्कच कौरव-सेना में हाहाकार मचाकर अन्त में कर्ण के हाथों मृत्यु को

प्राप्त हुआ था। अठारह अक्षौहिणी सेना का बडा हिस्सा तो मृत्यु के मुख में कभी का पड़ चुका था।

फिर भी..........

फिर भी इस काल-युद्ध में खास-खास लोग रणभूमि में घूम रहे थे। कुरुक्षेत्र के मैदान में सत्रह बार सूर्य उदय हुए और सत्रह लम्बी-लम्बी रातें बीत गईं। सत्रह दिनों से भीम और दुःशासन तथा भीम और दुर्योधन एक-दूसरे को खोजते फिरते थे, मौका मिलने पर एक-दूसरे के साथ लड़ते थे, एक-दूसरे को पछाड़ते थे, एक-दूसरे को घायल करते थे, एक-दूसरे के रथको तोड़ते थे, एक-दूसरे के सारथियों को घायल करते थे, फिर भी अभीतक वे जिन्दा थे।

कर्ण कौरवों का सेनापति हुआ। उसके सारथी मद्रराज शल्य थे। पांडुपुत्र अर्जुन को मारकर दुर्योधन के लिए विजय प्राप्त करना कर्ण का मनोरथ था।

लेकिन सत्रहवें दिन का सवेरा कुछ और ही तरह का हुआ। युद्ध शुरू होने पर कर्ण अर्जुन को खोजता हुआ एक ओर निकल गया। दूसरी ओर भीमसेन और दुःशासन की भेंट हो गई।

युद्ध में भीम और दुःशासन की यह कोई पहली ही भेंट नहीं थी। आज से पहले सोलह दिनों में वे कई बार एक दूसरों से भिड़ चुके थे। कई बार दोनों ने एक-दूसरे को घूरकर देखा था। और कई बार ऐसा भयंकर युद्ध भी किया था मानो एक-दूसरे के प्राण अभी ले लेंगे।

लेकिन आज का दिन और ही था। दोनों पक्षों की सेनायें लगभग क्षीण हो गई थीं, दोनों पक्षों के अंगुलि पर गिने जाने जितने ही धुरन्धर वीर बाकी बचे थे। ऐसे समय भीम और दुःशासन एक-दूसरे के आगे आये और अपने वैर का अन्तिम बदला ले लेने के इरादे से आपस में भिड़ पड़े।

"दुष्ट दुःशासन ! खड़ा रह। आज तू मेरे झपट्टे में से छूट नहीं सकता।" भीम ने गरजकर कहा।

"अबे रहने भी दे, अघोरी कहीं के ! अपनी बकवास अपने ही पास रख ! मनों नाज खा जाने वाले आदमी से कभी कोई बड़ा पराक्रम होते भी सुना है ?" दुःशासन भीम की खिल्ली उड़ाता हुआ बोला।

घायल सिंह जिस तरह से क्रुद्ध होता है उसी तरह क्रोधित होकर भीमसेन बोला, "ओ अन्धे के बच्चे दुःशासन ! आज तक भीमसेन ने जितने पराक्रम किये हैं, इसका तुझे कैसे पता चल सकता है ? पिछले सोलह दिनों में भीम के हाथों हाथियों की कितनी सेना का नाश हुआ इसका हिसाब लगाया है ? इसी अघोरी भीमसेन ने खुद तेरे ही कितने भाइयों को मार डाला है, इसका हिसाब लगाया है ? इस बकवास करने-वाले भीमसेन ने तेरे कितने रथों को तोड़ा है, इसका हिसाब करने के लिए तो तुझे अभी गुरु द्रोणाचार्य के पास ही भेजे देता हूं। चल, अब तैयार हो जा। भीम के पराक्रम के बारे में अब तुझे सुनना नहीं पड़ेगा, बल्कि स्वयं अनुभव करना पड़ेगा।" भीम ने ललकारा। और भीम और दुःशासन का युद्ध शुरू हुआ। गंगा नदी के किनारे किसी जंगल में मानो साठ-साठ वर्ष के दो मदोन्मत्त हाथी लड़ते हों, इस प्रकार वे लड़ने लगे। दोनों वीर थे, दोनों में हजार-हजार हाथियों का बल था, दोनों युद्ध-कला प्रवीण थे, और दोनों एक-दूसरे के प्रति गहरे द्वेष से भरे हुए थे।

दुःशासन के दोनों तरफ कुरु-योद्धा उसकी रक्षा को खड़े थे। अश्वत्थामा, दुर्योधन, कृपाचार्य आदि सब वहां आगये थे। बाद में कर्ण भी कुछ दूरी पर आगया।

दोनों एक-दूसरे को थका रहे थे, इतने में भीम ने अपनी गदा जोर से दुःशासन पर फेंकी। गदा के इस तीव्र प्रहार से दुःशासन का रथ चूर-चूर हो गया, उसकी ध्वजा टूट गई और सारथी भी मर गया। गदा के प्रहार से वह खुद भी बेहोश होकर नीचे गिर पड़ा। यह देख कर, सिंह जैसे अपने शिकार के पास पहुंच जाता है उसी प्रकार, भीम उसके पास पहुंचा और उसकी छाती पर पैर रख कर खड़ा हो गया।

"ओ कुरु-योद्धाओ ! यह भीमसेन तुम्हारे दुःशासन को मार रहा है, अब जिस किसी की हिम्मत हो वह यहां आकर इसकी रक्षा करे।" भीम ने गर्जना की, "सूतपुत्र कर्ण ! अपने इस दुर्योधन के भाई को बचाओ न ! तुम कौरवों को विजय दिलाने की बड़ी-बड़ी बातें तो करते हो, पर आज भीम के चंगुल में से अपने इस दुःशासन को तो छुड़ाओ। दुर्योधन ! अब कहां जाकर छिप गया ? द्रौपदी को बुलाने के लिए तूने इस दुःशासन को भेजा था, तो अब आकर तू और शकुनि इसको बचाते क्यों नहीं ? मामा शकुनि ! क्यों तुम्हारे हिसाब में कुछ फर्क पड़ गया क्या ?"

भीमसेन इस प्रकार अण्ट-शण्ट चिल्ला रहा था, इतने में दुःशासन को कुछ होश आया और उसने भीम की तरफ देखा। भीम उसे होश में आता देखकर और धधक उठा—"पापी दुःशासन ! तूने जिस हाथ से सती द्रौपदी की चोटी पकड़ी थी और जिस हाथ से तूने उसका चीर खींचा था, वह हाथ तो दिखा।"

भीम के मुंह से ये शब्द सुनते ही वीर की तरह हिम्मत करके दुःशासन ने अपना दाहिना हाथ ऊंचा किया और कहा, "पांचाली की चोटी पकड़ने वाला, उसके चीर को खींचनेवाला, धृतराष्ट्र की पुत्र-वधू का पाणिग्रहण करने वाला और हजारों सुवर्ण मुद्राओं का दान देने वाला यह रहा मेरा हाथ।"

दुःशासन के अपने दाहिने हाथ को ऊंचा करते ही भीम ने उसे पकड़ लिया और कहा, 'दुःशासन ! मैं तुझे अभी मारे डालता हूं। तेरा अन्त समय अब नजदीक ही है। अन्त समय तुझे किसी से कुछ कहना हो तो कहले।"

"भीमसेन ! तू खुशी से तुझे मार डाल। तुझे दुःख देने में मैंने कुछ उठा नहीं रक्खा था। ठेठ बचपन से ही तुझे देखकर मेरी आंखों में जहर उतर आता था। द्रौपदी के आने के बाद वह जहर और भी बढ़ा और वह आज तक कायम है। आज तेरे हाथों वीर की तरह मरते हुए

मुझे बड़ा आनन्द है ! लेकिन एक बात मेरे मन में अवश्य उठ रही है।" दुःशासन बोला।

"मन में जो हो वह कह डाल।" भीम ने कहा।

"भीमसेन ! मैं तो अब मौत के दरवाजे बैठा हूं, इसलिए दुनिया का ईर्षा-द्वेष मेरे मन से जारहा है और कोई नई ही सृष्टि मेरी नजरों के सामने खड़ी हो रही है। तू अपनी दुश्मनी भूल कर मेरी बात सुनेगा ? क्या तू यह नहीं मानता कि मनुष्य चाहे जैसा पापी हो, पर अन्त समय जब उसके जीवन का क्रिया-कलाप उसकी आंखों के सामने आता है तब वह झूठ नहीं बोल सकता ?" दुःशासन बोला।

"दुःशासन ! तुझे जो-कुछ कहना हो वह खुशी से कह।" भीम ने कहा "तू जो भी कुछ कहेगा, उसपर आज मैं विश्वास करूंगा।"

"भीमसेन ! जरा देरके लिए मेरे इस हाथको छोड़ दे। देख तो कैसी बदबू आ रही है इसमें ! इसको मैं आजतक न पहचान सका था। भीमसेन ! द्रौपदी से कहना कि तेरी चोटी पकड़नेवाले और तेरा चीर खींचनेवाले हाथ की आज कैसी दुर्गत हुई है। भीमसेन ! एक बात करोगे ?" दुःशासन बोला।

"मेरे इस हाथ को धड़ से जुदा करके इन दोनों सेनाओं को अच्छी तरह दिखाना। द्रौपदी के अपमान का यही मेरा प्रायश्चित है।" दुःशासन की आंखों में पानी भर आया।

"दुर्योधन से कुछ कहना है ?"

"भाईसाहब से क्या कहूं ? कर्ण से भी क्या कहूं ? मैं तो आज जा रहा हूँ। वे लोग भी मेरे पीछे आरहे हैं। भीम ! कोई यहां रहने वाला नहीं है। तुम अगर यह मानते हो कि कौरवों के मरने के बाद पृथ्वी तुम्हें मिल जायगी, तो यह भी तुम्हारी भूल है। तुम्हें भी मैं अपने पीछे आता हुआ देख रहा हूं। भीमसेन ! अब आंखों के आगे अन्धेरा छा रहा है।" दुःशासन का बोल बन्द हो गया।

दुःशासन का बोल बन्द होते ही भीम ने उसका दाहिना हाथ धड़

में से खींचकर अलग किया और उस हाथ को दोनों सेनाओं के योद्धाओं को दिखाया।

भीमसेन ने जब दुःशासन का हाथ ऊंचा किया तो आकाश से एक दिव्य-वाणी सुनाई दी :—

"दुनिया-भर की स्त्रियों के चीर-केश खींचने वाले लोगो ! दुःशासन का यह संदेशा सुनो ! तुम लोग जब-जब दुनिया की माताओं, पत्नियों तथा बहन-बेटियों को सताओ, उनका अपमान करो, उनकी चोटियां व चीर खींचो, उस समय यह भी याद रखना कि पृथ्वी के किसी हिस्से में एकाध भीमसेन भी तुम्हारे हाथों को धड़ से जुदा करने के लिए तैयार ही बैठा है। जबतक इस जगत् में पांचाली के समान स्त्रियां है और जबतक दुनिया में दुःशासन-जैसे लोग हैं, तबतक संसार के किसी हिस्से में भीमसेन भी पैदा होता रहेगा और पांचालियों का बदला लेगा। जगत् का कोई भी दुःशासन इस बात को न भूले।"

दुःशासन की आखिरी बातों को सुनकर भीमसेन का हृदय भी थोड़ी देर के लिए पिघल गया, और उसके हृदय से वैरभाव भी मिट गया। लेकिन अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने और कौरवों की सेना में भय व आतंक पैदा करने के खयाल से वह दुःशासन के शव का हृदय चीर कर उसका गरम-गरम खून पीने लगा और बोला, "कुरुक्षेत्र के मैदान में एकत्र वीर क्षत्रियो ! भीम ने भरी सभा में जो प्रतिज्ञा की थी, आज दुःशासन का खून पीकर उसे पूरी कर रहा है। जो मिठास शहद, शक्कर, अंगूर, अमृत या माता कुन्ती के दूध में है उससे भी अधिक मिठास आज मुझे इस खून में मालूम होती है। प्यारी पांचाली ! आज भीम कृतार्थ हुआ।"

भीम का यह भयंकर कृत्य सैनिक देख न सके।

: ८ :

अभिमान दूर होता है

महाभारत खत्म हुआ और हस्तिनापुर में महाराज युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ। खून से सने हुए कांटों के राजमुकुट को कुछ वर्षों तक तो युधिष्ठिर ने किसी तरह अपने सिर पर धारण किया, लेकिन बाद में पाण्डवों के अन्तर में ऐसी वेदना होने लगी कि अन्त में युधिष्ठिर ने राजमुकुट अपने सिर पर से उतारकर अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित के सिर पर रक्खा और पाण्डवों तथा द्रौपदी के साथ हिमालय जाने का निर्णय किया।

महाराज परीक्षित ने मुकुट धारण किया और अभिमन्यु के पुत्र को राजगद्दी पर बैठा देखकर राजमाता उत्तरा के हर्ष का पार न रहा। सारे हस्तिनापुर में परीक्षित का जयजयकार होने लगा।

पर भीमसेन इस मंगल-प्रसंग पर महल के एक कमरे में किसी गंभीर विचार में लीन था।

"तुम यहां कैसे बैठे हो, भीमसेन! सब लोग तो आनन्द मना रहे हैं, तब तुम यहां छिपे बैठे हो?" द्रौपदी ने आकर भीम से कहा।

भीम ने द्रौपदी की ओर देखा—"देवी! तुम्हारे सिर पर से आज साम्राज्ञी का भार दूर हुआ, इससे हृदय हलका हुआ होगा न?"

"भीमसेन इस तरह क्यों बोलते हो? हमारा वंशज गद्दी पर बैठे और हम उन लोगों को सुखी छोड़कर अपने रास्ते लगें, इससे अच्छा और क्या होगा? कल सुबह तो हम लोग हिमालय पर चलनेवाले हैं, यह तो तुम जानते ही हो।" द्रौपदी ने कहा।

"द्रौपदी! तुम जाओ। मेरी तबीयत आज ठीक नहीं है। इसीसे थोड़ा यहां एकान्त में बैठना चाहता हूं।" भीमसेन बोला।

"हुआ क्या है? किस विचार में पड़े हो?" द्रौपदी ने पूछा।

"देवी, एक बात पूछना चाहता हूं। पूछूं?" भीम बोला।

"प्यारे भीमसेन ! आज तुम इस प्रकार क्यों बोल रहे हो ?" द्रौपदी ने कहा ।

"मैं बड़ी बेचैनी अनुभव करता हूं। आज मुझे किसी तरह भी चैन नहीं पड़ता। हस्तिनापुर का यह राज्य, यह महल, यह बगीचा, यह वैभव, सब आज न जाने क्यों मुझे अच्छा नहीं लगता, और थोड़ी-थोड़ी देर में मेरा जी ऐसा मालूम होता है मानों किसी गहराई में उतरता हो । मेरा अपना शरीर ही मुझे भार-रूप मालूम होता है और सांप जैसे केंचुल उतारकर फिर स्वस्थ हो जाता है उसी तरह इस शरीर को फेंककर कब शांति अनुभव करूं यही मन में आता है।" भीम ने कहना शुरू किया ।

"यों ही एकांत में बैठकर विचार करते रहने से ऐसे विचार आते रहते हैं। चलो उठो, वहां सब तुम्हारी राह देख रहे हैं।" द्रौपदी बोली।

"सब कौन ?"

"महाराज युधिष्ठिर, अर्जुन, सहदेव वगैरा।"

"देवी ! एक बात कहता हूं। विश्वास करोगी ?" भीम ने कहा ।

"तुम्हारी बात पर विश्वास न करूंगी तो फिर किसकी बात पर करूंगी ? कहो न !" द्रौपदी बोली ।

"आजतक मैं भय जैसी चीज को जानता ही नहीं था...... ।" भीम कहने लगा।

"जरूर ! मेरे भीम के पास भय फड़क ही कहां से सकता है ?" द्रौपदी बोली ।

"पर पांचाली ! आज मेरी आंखें खुलीं और ऐसा लगा कि मैं तो बड़ा डरपोक हूं।" भीम तनकर बैठ गया ।

"तुम और डरपोक ! इतने राक्षसों को मारनेवाला, शत्रुओं का संहार करनेवाला, दुःशासन का खून पीनेवाला, दुर्योधन का नाश करने वाला भीमसेन डरपोक ! यह नया आविष्कार तुमने कहां से किया ?

दिमाग फिर गया है, पागल तो नहीं हो गए ?" द्रौपदी ने मजाक करते हुए कहा ।

"देवी ! न तो मेरा दिमाग ही फिरा है और न मैं पागल ही हुआ हूं। मैं खुद ही ऐसा मानता था कि भीमसेन तो डर का भी बाप है। लेकिन देवी, आज मुझे मेरी भूल मालूम हो गई है ।" भीमसेन ने कहा।

"कैसे मालूम हुई ?"

"आज महाराज युधिष्ठिर ने जब अपने सिर का राजमुकुट परीक्षित के सिर पर रक्खा तब मैं वहां मौजूद था। जब महाराज मुकुट उतार रहे थे, मेरी आंखों के सामने मानो दुर्योधन आ खड़ा हुआ। दुर्योधन— हां, दुर्योधन ही था वह। उसका सिर खुला हुआ था; उसकी जाघ में से खून बह रहा था; उसके सिर के दाहिनी ओर मेरी लात के निशान थे। वह मुझे अपनी जांघ दिखा रहा था।" भीम बोल रहा था और उसकी सांस फूल रही थी।

"यह क्या कहते हो ? यों तो जब मैं साम्राज्ञी हुई थी उस रात मुझे भी भानुमती सपने में दिखाई दी थी। लेकिन मैंने तो तुमसे इस बारे में कुछ नहीं कहा।" द्रौपदी बोली।

"देवी ! यह बात नहीं है। दुर्योधन को इस प्रकार देखने के बाद मेरे मन में तरह-तरह की उथल-पुथल हो रही है। कभी मैं द्रोण को देखता हूं, तो कभी जरासंध सामने आता है, और थोड़ी देर में कौरवपुत्र मेरे सामने आते हैं। इन सबको देखकर मुझे डर नहीं लगता। लेकिन इन सभी को मैंने मारा, यह विचार करते-करते दिल जरा गहरे में चला जाता है। तब अन्दर से कोई कहता है—'भीम, और गहरे में मत जा। यह गहराई बहुत भयंकर है।' अन्दर की यह आवाज सुनकर मैं उन विचारों से बचने की कोशिश करता हूँ, और फिर से अन्दर नजर डालते हुए डरता हूं। इस डर के मारे मुझे ऐसी कंपकपी का अनुभव होता है जैसा मैंने अपने जीवन में पहले कभी अनुभव नहीं किया। मेरी आंखें चढ़ जाती हैं, शरीर पसीना-पसीना हो जाता है और मैं कांपने लगता

हूं। ऐसा मन होता है कि इस समय कोई मुझे मार डाले तो ठीक।" भीम ने कहा।

"तुम भी बड़े अजाब हो। इन फिजूल की बातों में अपना दिमाग क्यों खराब करते हो।" द्रौपदी बोली।

"देवी! तुम्हारे जीवन में भी कभी ऐसे मानसिक तूफान आये हैं?" भीम ने पूछा।

"आये तो हैं; लेकिन जब आते हैं तब दो घड़ी रो-धोकर मन हलका कर लेती हूँ, और फिर अपने काम में लग जाती हूँ।" द्रौपदी बोली।

"द्रौपदी! मेरे जीवन में तो यह पहला अनुभव है। और अन्तर में डुबकी मारकर जब देखता हूँ, तो जिनका मुझे सपने में भी कोई खयाल नहीं था ऐसी बुरी-बुरी चीज दीखती हैं और मुझे चकित कर देती हैं द्रौपदी, मुझे तो यह सारी सृष्टि ही नई मालूम पड़ती है और इस सृष्टि के आगे हजार हाथियों की ताकतवाला मैं बिलकुल दीन बन जाता हूँ?" भीम दीन बनता हुआ बोला।

"खैर, अभी तो यहां से चलो। यह सब फिर सोचना।" द्रौपदी बोली।

"नहीं, पांचाली! डरते-डरते भी मन में तो यही आता है कि मैं अपने अन्दर दृष्टि डालता ही रहूँ। अंदर न जाने कितना मैल और कूड़ा-करकट जमा हो गया होगा। ऐसा करने से वह बाहर आ जायगा और भीमसेन को नई दुनिया का दर्शन हो सकेगा।" भीम बोला।

"पर ऐसा करते रहने से तो तुम पागल हो जाओगे।" द्रौपदी बोली।

"मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम ऐसा न करने दोगी तो मैं पागल हो जाऊंगा।" भीम बोला।

"खैर, अभी तो महाराज के पास चलो।" द्रौपदी ने भीमसेन को हाथ पकड़कर उठाया।

"चलो चलता हूँ; पर महाराज युधिष्ठिर के सामने भी अपने मन

की यह उथल-पुथल कहे बिना मेरे मन को चैन नहीं पड़ेगा।" भीमसेन बोला।

"कल से तो हम सब साथ ही हैं। हिमालय की तरफ चलते-चलते रास्ते में यही बातें करेंगे।" द्रौपदी बोली।

"अच्छा, देवी चलो।"

भीमसेन खड़ा हुआ और मण्डप में जहां सब भाई उसकी राह देख रहे थे वहां गया।

× × ×

दूसरे दिन पांचों पांडव और द्रौपदी हिमालय की ओर चल दिये। रास्ते मे सहदेव गिरा, नकुल गिरा, पांचाली गिरी और अर्जुन भी गिर पड़ा।

आगे युधिष्ठिर, पीछे भीमसेन और उसके पीछे एक कुत्ता—बस, ये तीनों जने चले जा रहे थे। इतने में भीमसेन को चक्कर आया और वह बैठ गया।

"महाराज, महाराज! आपका भीमसेन भी अब यहीं रुका जाता है।" भीम ने पुकारा।

युधिष्ठिरने पीछे घूमकर देखा, "भाई भीमसेन! तुम भी गिर पड़े?"

"भाईसाहब! अपने मन की उथल-पुथल मैं आपको बता ही चुका हूँ। आज मैं उसी के वश होकर यहां पड़ा हूँ। जो बुद्धिपरीक्षित के अभिषेक के दिन आई वह उससे पहले आई होती तो महाराज, आपके वचनों को मैं ज्यादा समझ सकता। लेकिन भाईसाहब! मुझे माफ करें। मनुष्य के पास अन्तरात्मा जैसी कोई चीज भी है, यह मैं तब कहां जानता था? अगर यह मालूम होता तो द्रोण को मारने के लिए झूठ न बोलता, दुर्योधन की जांघ मे गदा न चलाता, क्षमा के लिए कही हुई आपकी बातों का उपहास न करता, और शत्रुओं की हत्या करके सुख बिताने की इच्छा न रखता। लेकिन महाराज! मैंने तो अपने बल के अभिमान में दूसरी किसी बात का विचार ही नहीं किया और

शरीर-बल को ही सब-कुछ माना। आज भीमसेन का यह शरीर अब उसका नहीं रहा।" भीम अत्यन्त दीन होकर बोल रहा था।

"भाई भीमसेन! व्यर्थ का शोक मत कर! तुझे जो ठीक लगा वह तूने किया। आज इतनी देर में भी तुझे यह भान हुआ, यही अपना सद्भाग्य समझ। भाई, तेरा कल्याण हो! तुम सब भाई और पांचाली हमेशा के लिए यहां सो गए और मैं अकेला जा रहा हूँ। मेरे भाग्य में आगे क्या लिखा है, यह ईश्वर ही जाने। भाई भीमसेन! परमात्मा तुम्हें शांति दे।"

युधिष्ठिर आगे चले, भीमसेन का शरीर वहीं पड़ा रह गया।

कुन्ती का पुत्र, दुर्योधन और कौरवों का कट्टर शत्रु, पांडवों को अनेक विपत्तियों से बचाने वाला, द्रौपदी का रसिक पति, राक्षसों का संहार करनेवाला, शरीरबल की साक्षात् मूर्ति और हजार हाथियों की ताकत रखनेवाला भीमसेन देवताओं के दरबार में पहुंच गया।

अर्जुन

: १ :

एक लक्ष्य

द्रुपद के दरबार में अपमानित होने के बाद घूमते-फिरते द्रोण हस्तिनापुर आ पहुंचे। गांव के बाहर एक कुएं के पास कुछ राजकुमार खेल रहे थे। उनकी गेंद उस कुएं में गिर गई थी और वे उसे निकाल नहीं पाते थे। द्रोण ने अपनी अस्त्रविद्या के प्रभाव से कुएं में से गेंद बाहर निकाल दी। कुमारों ने यह बात जाकर भीष्म पितामह और महाराज धृतराष्ट्र से कही, जिसे सुनकर उन्होंने द्रोण को राजकुमारों को शस्त्रास्त्र-विद्या सिखाने के लिए उनके गुरु के रूप में नियुक्त कर दिया।

उन दिनों गुरु-सेवा विद्यार्थी-जीवन का एक आवश्यक अंग समझा जाता था। विद्यार्थी गुरुकुल में रहते हुए गुरुकुल के छोटे-बड़े सब काम खुद ही कर लेते, और इस प्रकार जीवन में स्वावलंबन की अमूल्य शिक्षा पाते थे। आश्रम में प्रविष्ट होनेवाले नये विद्यार्थी आश्रम की गायों को जंगल में चराने ले जाते, आश्रम के वृक्षों को पानी देते और गुरु के यज्ञ के लिए समिधा लाते। जीवन के ऐसे-ऐसे कामों को पार कर जाने के बाद ही उनका नियमित विद्याध्ययन शुरू होता था। गुरुकुल में गरीब-अमीर सभी विद्यार्थियों के साथ एक-सा व्यवहार होता था। यहांतक कि बड़े-बड़े राजकुमार भी गुरुकुल के लिए लकड़ी काटने या गुरु के लिए ऐसे-वैसे काम करने में कोई हीनता नहीं समझते

थे। गुरु द्रोण का अपना कोई आश्रम तो था नहीं, और राजकुमारों के सिवा दूसरों के लिए उनकी शाला के दरवाजे बन्द थे; फिर भी कौरव-पाण्डवों को द्रोण की सेवा की शिक्षा तो मिली ही थी।

राजकुमार रोज सुबह नहाने और पानी भरने के लिए तालाब पर जाते। पानी भरने के लिए हरेक को एक-एक घड़ा मिला हुआ था।

एक रोज भीम और अर्जुन तालाब की ओर जा रहे थे। अर्जुन जरा जल्दी-जल्दी पैर उठाकर आगे बढ़ने लगा। यह देख भीमसेन बोला—"भाई अर्जुन! पानी तो मुझे भी भरना है। तू अकेला ही पानी भरने आया है और हम खाली घडे लेकर वापस जावेंगे, ऐसा तो है नहीं।"

"भीमसेन! तुम धीरे-धीरे आना। मैं तो चलता हूं। मुझे जरा जल्दी है।" अर्जुन ने कहा।

"जल्दी क्या है? और फिर आज तो पढ़ने की छुट्टी भी है, इसलिए और मौज है।" भीम बोला।

"ऐं·········छुट्टी है? यह तो मुझे पता ही नहीं था।" अर्जुन खड़ा रह गया।

"तुझे कैसे मालूम हो? तू तो रोज जल्दी-जल्दी नहा-धोकर पानी भरने चला जाता है। न किसी से बोलता है और न खेलता ही है, न डुबकियां ही लगाता है और न तैरता ही है। तू भला और तेरा अभ्यास भला। भला यह भी कोई बात है? दुनिया में कुछ धूमा-मस्ती भी तो चाहिए। आज देखना मैं क्या मजा करता हूं। मैं दुःशासन का गला पकड़कर उसे पानी में डुबोऊंगा और फिर उसकी पीठ पर ऐसी चढ़ी करूंगा, बच्चू को नानी-दादी याद आजायगी।"

"भाई भीमसेन! सच बताऊं? बहुत दिनसे मैं तुमसे एक बात करने की सोचता था, लेकिन कोई मौका ही नहीं मिलता था।" अर्जुन बोला।

"भला ऐसी तो क्या बात है!" भीम ने कहा।

"सुनो, हमारे गुरु द्रोण जब हमें पानी भरने के लिए भेजते हैं तब पीछे से अपने पुत्र अश्वत्थामा को चुपचाप विद्या सिखा देते हैं।" अर्जुन बोला।

"लेकिन अश्वत्थामा भी तो हमारे साथ पानी भरने आता है?" भीम की समझ में यह बात नहीं आई।

"आता तो साथ ही है, पर फौरन ही वापस चला जाता है। गुरुजी ने हम सबको तो संकरे मुंह वाले घड़े दिये हैं और अश्वत्थामा को चौड़े मुंह वाला दिया है, जिससे उसका घड़ा जल्दी भर जाता है और वह हमसे पहले पहुँच जाता है।" अर्जुन ने भीम को समझाया।

"यह बात है! अश्वत्थामा जल्दी जाता है, यह तो मैं भी देखता हूं।" भीम ने कुछ सोचते हुए कहा।

"और वह सिर्फ इस लिए।" अर्जुन ने कहा, "मैं अच्छी तरह जानता हूं, इसीसे कह रहा हूं।"

"तो भाई अर्जुन!" भीमसेन क्रोध में उबल पड़ा, "ऐसे पक्षपाती गुरु से हमें नहीं पढ़ना। चलो, पितामह से हम यह बात कहेंगे। अश्वत्थामा को हमसे चुपके-चुपके पढ़ाना तो चोरी हुई।"

"भीम!" भीम के कन्धे पर हाथ रखकर अर्जुन ने कहा, "जरा धीरे बोलो, नहीं तो ये दुर्योधन वगैरा जो जा रहे हैं वे सुन लेंगे। जबसे मुझे अश्वत्थामा सम्बन्धी यह बात मालूम हुई है तभी से मैं भी जल्दी-जल्दी पानी भरके पहुंच जाता हूं ताकि गुरुजी मुझे भी ज्यादा सिखाने लगें।"

"हूं.....। अब समझा। इसीसे गुरुजी भी जब-तब कहा करते हैं कि 'अर्जुन सबसे ज्यादा होशियार है।' अब बात समझ में आई। लेकिन हमारी तरफ से अश्वत्थामा विद्या में पारंगत हो और चाहे तू भी पारंगत हो जा, अपने राम तो मौज से नहा-धोकर घूमामस्ती करके ही आवेंगे। सीखना होगा तो शान्ति से सीखेंगे। द्रोण अगर न सिखावेंगे तो दुनिया में गुरु का कोई अकाल पड़ा है?" भीम बोला।

"भीमसेन! मेरे लिए तो द्रोण जैसा दूसरा गुरु नहीं है, इसलिए

जैसे भी हो वैसे मैं तो उनसे सारी विद्या सीख लेना चाहता हूं। अस्त्र-विद्या में द्रोण जैसे गुरु आज सारी दुनिया में नहीं हैं। इसलिए मैं तो इधर-उधर के पचड़े में पड़े बगैर उनसे इस विद्या का रहस्य सीख लेना चाहता हूं।" अर्जुन बोला।

"अर्जुन! तेरा विचार तू कर। मुझे तो ऐसे पक्षपाती गुरु की विद्या कम भी मिली तो भी उसमें मेरा क्या नुकसान है? फिर मुझे तो पितामह कहते थे कि कुछ दिन बाद तुझे और दुर्योधन को गदायुद्ध की विशेष रूप से शिक्षा दिलाने के लिए बलरामजी के पास भेजना है।" भीम ने बात का अन्त किया।

"भीमसेन! और भी कुछ तुझे मालूम है?" अर्जुन ने पूछा।

"क्या?"

"वही भीलकुमार वाली?" अर्जुन बोला।

"नहीं तो।" भीम ने कहा।

"कल भीलों के राजा का लड़का एकलव्य गुरु द्रोण का शिष्य बनकर अस्त्र विद्या सीखनेके लिए आया था।" अर्जुन ने कहा।

"फिर क्या हुआ?"

"गुरु ने पितामह आदि की सलाह लेकर एकलव्य को शिष्य के रूप में स्वीकार करने से इनकार कर दिया।" अर्जुन ने कहा।

"ठीक ही किया!" भीमसेन बोला, "भला जंगली भीलों को हमारे साथ कैसे रक्खा जा सकता है? हम तो आखिर हस्तिनापुर के राजकुमार हैं न!"

"भीमसेन!" अर्जुन से न रहा गया, "तुम्हारा कहना ठीक नहीं है। हम लोग राजकुमार हैं यह तो सच है; लेकिन उस भीलकुमार को अगर तुमने देखा होता, तो तुम्हारी आंखें निश्चल रह जातीं। रंग तो उसका अलबत्ता काला है, लेकिन शरीर उसका कैसा मनोमोहक है! उसके हाथ देखते तो कहते। बड़े-बड़े देवताओं के धनुष भी ऐसे हाथों में पड़ने के लिए तरसते होंगे। उसकी आंखों में इतनी तीक्ष्णता कि अन्धेरे

में भी निशाना न चूकें। मुंह पर अडिग निश्चय की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। और चेहरे से ऐसा मालूम पड़ता है मानो उसका हृदय अस्त्र-विद्या के लिए कितने ही युगों का भूखा है। मुझे तो उसको देखते ही ऐसा लगा मानो मेरी विद्या उसके सामने कुछ नहीं है, और थोड़ी देर के लिए तो मैं गुरु के पीछे छिप गया। बाद में मन कुछ स्वस्थ हुआ। भीम! उसकी गम्भीर चाल को मैं अभी भी नहीं भूल सकता।"

"अर्जुन!" भीम खिलखिलाकर हंसते हुए बोला, "ऐसे कितने ही जानवर हस्तिनापुर में रोज आते और चले जाते हैं। तू तो पागल है जो ऐसों की याद रखता है। हम लोग जहां शिकार के लिए जाते हैं वहां ऐसे कितने ही भील मैं तुझे दिखा सकता हूं। ले चल, अब देर हो रही है। वे लोग पानी में गोते लगा रहे हैं, यह देखकर मेरा हृदय भी उछल रहा है। तू देख, अभी-अभी इस दुःशासन का गला पकड़कर उसे पानी में डुबोता हूं।"

इस तरह बातें करते-करते दोनों भाई तालाब के किनारे पहुंच गये।

× × × ×

राजकुमारों की परीक्षा का समय नजदीक आ रहा था। पितामह चाहते थे कि कुमारों ने द्रोणाचार्य से जो कुछ सीखा है उसे हस्तिनापुर की सारी प्रजा देखे।

इस बीच द्रोणाचार्य ने अपने संतोष के लिए शिष्यों की परीक्षा करने का विचार किया। एक रोज जब सब कुमार अस्त्रशाला में मौजूद थे, अचानक आचार्य ने प्रकट किया कि "आज मैं तुम सबकी परीक्षा लेनेवाला हूं।"

सब राजकुमार तैयार होगये और अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर मैदान में आये। मैदान में दूर एक पेड़ पर सफेद रंग का एक नकली पक्षी बैठा दिया गया था। लाल रंग के दो रत्नों से उसकी आंखें बनाई हुई थीं।

आचार्य ने राजकुमारों से कहा—"उस पेड़ पर जो पक्षी बैठा है, उसकी आंखों को तुम्हें निशाना बनाना है।"

राजकुमार तैयार हुए, उनके हाथ तैयार हुए; उनकी आंखें तयार हुईं, उनके धनुष तैयार हुए, उनके तीर भी तैयार हुए।

आचार्य बोले—"कुमार युधिष्ठिर! सबसे पहले तुम्हारा नम्बर है। देखो, यह मैं खड़ा हूं, सामने सफेद आसमान है, वह पेड़ है, और उसपर सफेद पक्षी है। तुम इन सबको देख रहे हो?"

युधिष्ठिर खड़े हुए हाथ में धनुष बाण लिये पक्षी की ओर देखकर बोले—"गुरु महाराज! मैं आपको भी देखता हूं, सफेद आसमान को भी देख रहा हूं, दूर के उस पेड़ को भी देख रहा हूं और साथ ही उस नकली पक्षी को भी देख रहा हूं।"

युधिष्ठिर के इस उत्तर से खिन्न होकर द्रोण ने कहा, "तुम बैठ जाओ।"

फिर दुर्योधन की बारी आई। "कुमार दुर्योधन! देखो, यह मैं खड़ा हूं; सामने सफेद आसमान है; वह सामने पेड़ है, और उसपर पक्षी है। तुम्हें ये सब दीखते हैं?"

दुर्योधन ने हाथ में धनुष-बाण लेते हुए जवाब दिया, "गुरुदेव! मैं इन सब भाइयों को देख रहा हूं, आपको भी देखता हूं, सफेद आसमान भी देख रहा हूं, पेड़ को भी देख रहा हूं और उसपर बैठे हुए पक्षी के सफेद शरीर को भी देख रहा हूं।"

द्रोण ने हाथ पटकते हुए कहा, "बैठ जाओ।"

फिर भीमसेन खड़ा हुआ और आचार्य के प्रश्न के जवाब में बोला—"गुरुजी! मैं आप सब लोगों को देख रहा हूं, आकाश को भी देख रहा हूं, आकाश में जो बड़े-बड़े बादल घूम रहे हैं उनको भी देखता हूं, पेड़ के कोटर में बिलाव घूम रहा है उसको भी देख रहा हूं और पेड़ पर कुछ सफेद-सा जो रक्खा हुआ है उसको भी देख रहा हूं।"

द्रोण निरुत्तर हुए और भीम को भी बैठा दिया। गुरु ने सबसे पूछा, लेकिन किसी के उत्तर से उनको संतोष नहीं हुआ। तब अन्त में अर्जुन की तरफ मुड़े—"बेटा अर्जुन! अब तेरी बारी है। तुझी पर मेरी सब आशाएं

का दारोमदार है। इन सबको तो मुझे जबरदस्ती पढ़ाना पड़ता है, जबकि तू विद्या का भूखा रोज मुझे खोजता हुआ आता है। उठ, तैयार हो। देख यह मैं खड़ा हूं, सामने सफेद आसमान है, दूर पर वह पेड़ है, और उसपर पक्षी बैठा हुआ है। तू इन सबको देखता है?"

द्रोण अपना वाक्य समाप्त कर ही रहे थे कि अर्जुन बोल उठा— "गुरुदेव! न मैं आपको देखता हूं न आकाश को, पेड़ भी मुझे नहीं दिखाई देता; मुझे तो सिर्फ वहां एक पक्षी दिखाई देता है। तीर चलाने की आज्ञा दीजिए।"

"बेटा अर्जुन!" द्रोण बोले, "इनमें से कोई दिखाई नहीं देता! अकेले पक्षी को ही देखते हो?"

"महाराज! अब तो सारा पक्षी भी नहीं दिखाई देता।" अर्जुन ने जवाब दिया, और द्रोण कुछ बोलने ही वाले थे कि अर्जुन फिर बोल उठा—"महाराज! अब तो पक्षी का सिर भी मुझे नहीं दीखता; सिर्फ दो लाल तारे वहां टिमटिमाते हुए दिखाई दे रहे हैं।"

"बेटा, उन्हीं को बींध!"

द्रोण के शब्द मुंह से बाहर निकले न निकले कि अर्जुन का तीर सन-सन करता हुआ निकला और पक्षी की आंखों को बींधता हुआ पार होगया।

"शाबाश बेटा, शाबाश! तू ही मेरा सच्चा शिष्य है। तुझपर मैं आज बड़ा प्रसन्न हुआ हूं। बेटा! आज मैं तुझे वरदान देता हूं कि अस्त्र-विद्या में मेरा कोई भी शिष्य तुझसे बढ़कर नहीं हो सकेगा।"

"द्रोणाचार्य ने अर्जुन को छाती से लगाया और उसका सिर सूंघा। चारों भाइयों ने अर्जुन को घेर लिया और खुशी मनाने लगे और कौरव, सब एक कोने में इकट्ठे होकर चर्चा करने लगे।

× × ×

राजमहल के एक सुन्दर बगीचे में द्रोणाचार्य और दुर्योधन इधर-

उधर घूम रहे थे; दुःशासन और कर्ण थोड़ी दूर पर उनके पीछे-पीछे चल रहे थे ।

"कुमार दुर्योधन !" द्रोण बोले, "विद्या सिखाने में तुम्हारे और अर्जुन के बीच मैंने कोई भेद नहीं रक्खा । तुम्हें ऐसा लगता हो कि मैंने कोई भेद रक्खा है तो यह तुम्हारा भ्रम है ।"

"हम सबको तो ऐसा ही लगता रहा है ।" दुर्योधन ने बताया ।

"ऐसा मानने का कोई खास कारण भी है ?" द्रोण ने पूछा ।

"कारण एक-दो नहीं अनेक हैं । देखिए, आप हम सबको तो दिन में तीर चलाना सिखाते थे, पर अर्जुन को अंधेरी रात में भी तीर चलाना सिखाया । यह सच है न ?" दुर्योधन ने पूछा ।

"पूरा सच तो नहीं, पर अर्ध सत्य जरूर है । एक बार अर्जुन अंधेरे में भोजन करने बैठा तब उसका ग्रास इधर-उधर न जाकर सीधा मुंह में ही चला गया, इसपर उसे लगा कि रोज का अभ्यास ही जीवन में बड़ी चीज है । बस, उस दिन से वह रात के अन्धेरे में तीर चलाने का अभ्यास करने लगा । खुद मुझे भी इस बात की बहुत दिन बाद खबर लगी । अर्जुन की तरह तुमने भी अगर अभ्यास करना शुरू किया होता तो तुम भी इसी तरह कर सकते थे ।" द्रोण ने जवाब दिया ।

"दूसरी बात", दुर्योधन द्रोण की ओर देखकर बोला, "यह है कि अर्जुन जब पानी का घड़ा भरकर पहले आ जाता तो आप उसे थोड़ी-बहुत रहस्यविद्या सिखाते थे । बोलिए, यह सच है न ?"

"बिलकुल सच ।" द्रोण ने निधड़क जवाब दिया ।

"यही आपका पक्षपात है । यही अर्जुन के और हमारे बीच आपका पक्षपात है ।" दुर्योधन अपने साथियों को कनखियों से देखकर बोला ।

"कुमार ! अर्जुन को तुम्हारी बनिस्बत विद्या की भूख ज्यादा है । वह अपने दूसरे कामों से जल्दी निपटकर विद्या प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहे और इस कारण वह तुम्हारी बनिस्बत ज्यादा सीख ले, यह स्वाभाविक

नहीं है क्या ? अर्जुन की जठराग्नि तुमसे ज्यादा प्रबल है, यह द्रोण का दोष है या तुम्हारा अपना ?" द्रोण ने पूछा।

"गुरुदेव ! विद्या की भूख तो हमें भी अर्जुन जितनी ही थी, लेकिन आपने हमारी उस भूख को प्रोत्साहन कहां दिया ? आप तो अर्जुन को देखते ही पागल होजाते थे !" दुर्योधन ने कटाक्ष किया।

"कुमार दुर्योधन ! अपनी विद्या का सच्चा अधिकारी शिष्य मिले तो गुरु का हृदय कितना प्रसन्न होता है, इसका अनुभव मैं तुम्हें कैसे कराऊं ? मनुष्यमात्र सन्तति के लिए तरसता है, यहां तक कि सन्तति के लिए लोग प्राण तक दे देते हैं। पर अधिकारी शिष्य ही हमारी सन्तति है। सत्पुत्र के प्रति पिता का अधिक प्रेम दोष हो, तो ऐसा दोष द्रोण ने भी जरूर किया है।" द्रोण बोले।

"गुरुदेव ! इतना ही नहीं, इस अर्जुन की खातिर ही आप भीलकुमार एकलव्य का अंगूठा काटने के लिए खुद गये। परीक्षा के मण्डप में कर्ण कहीं अर्जुन को हरा न दे, इस डर से आपने कर्ण को द्वन्द्व में उतरने ही नहीं दिया। आपके शत्रु द्रुपद को पकड़ने के लिए हम सब साथ गये थे, लेकिन द्रुपद को पकड़ने का श्रेय अकेले अर्जुन को ही मिला। और यह सारी गुरु-दक्षिणा जैसे अकेले अर्जुन ने ही आपको दी हो, इस तरह उसीको आपने अपना ब्रह्मास्त्र दिया। ये और ऐसी छोटी-मोटी अनेक बातें एक साथ मिलाकर देखिए, तब कहिए कि आप अर्जुन का पक्षपात करते हैं या नहीं ?" दुर्योधन ने द्रोण की ओर देखा।

"तो कुमार ! साफ ही कह दूं ?" द्रोण निडर होकर बोले—"अर्जुन के प्रति शुरू से ही मेरा पक्षपात था, है और रहेगा। जिस विद्या की उपासना मैं जीवन-भर करता रहा हूं, उसका सच्चा अधिकारी तुम सब में एक अर्जुन ही है। इतना ही नहीं, बल्कि मैं तो यह भी देखता हूं कि अर्जुन आगे चलकर कहीं मेरा भी गुरु न होजाय। मेरे जैसे ब्राह्मण को अगर विद्या के सच्चे शिष्य न मिलें, तो जीवन-भर हृदय में सन्ताप ही रहा करता है और जीवन के अन्त में ब्रह्मराक्षस का अवतार लेना पड़ता

है, यह तुम्हें मालूम है ? कुमार ! मुझे तो तुम्हारी इन बातों में अर्जुन के प्रति तुम्हारे द्वेष के सिवा और कुछ नहीं मालूम पड़ता। कुमार ! याद रक्खो, ऐसे द्वेष से तुम अर्जुन से बढ़ कर नहीं हो सकते।" द्रोण की आवाज में तेजी आने लगी।

"आचार्य ! आप किससे बातें कर रहे हैं, यह भी ध्यान में है ? मैं दुर्योधन हस्तिनापुर का भावी महाराजा हूं। आप मेरे गुरु हैं, लेकिन आपको मुझे सब-कुछ कहने का अधिकार नहीं है।" दुर्योधन अकड़कर बोला।

"दुर्योधन द्रोणाचार्य को चाहे जो कहे, और द्रोण दुर्योधन से कुछ भी नहीं कहे ! ऐसी क्या बात है ? कुमार ! तुम अभी बच्चे हो। आगे से पितामह और धृतराष्ट्र से पूछकर तब मेरे साथ बातें करने आना।" द्रोण ने चेताया।

"दुःशासन ! कर्ण ! चलो। गुरुजी ! आप जितना चाहें अर्जुन के साथ पक्षपात करें। अब हम भी सब विद्या सीख रहे हैं। अब देखेंगे कि यह अर्जुन आपके गुरुत्व को कितना निभाता है।"

यह कहकर दुर्योधन मुंह फेरकर चल दिया। कर्ण और दुःशासन आचार्य का मजाक उड़ाते हुए दुर्योधन के पीछे-पीछे गये।

: २ :

द्रौपदी-स्वयंवर

लाक्षागृह से निकल भागने के बाद पाण्डव गंगा-किनारे के जंगलों में चले गये। युधिष्ठिर का इरादा कुछ समय तक इसी प्रकार घूमने का था, जिससे कोई पहचान न सके। जंगलों में भटकते हुए भीमसेन ने हिडिंब राक्षस का वध किया और हिडिंबा के साथ शादी की। आगे बढ़ते-बढ़ते वे एकचक्रानगरी में जा पहुंचे। वहां भीमसेन ने बकासुर को मार कर संपूर्ण एकचक्रानगरी को राक्षसों के त्रास से मुक्त किया। परन्तु भीमसेन के ऐसे अद्भुत पराक्रमों से युधिष्ठिर को

हमेशा यह डर लगा रहता था कि दुर्योधन को हमारी खबर न लग जाय। इस कारण बकासुर को मारकर तुरन्त ही वे एकचक्रानगरी से भी चल पड़े। रास्ते में उन्हें द्रुपद राजा की पुत्री के स्वयंवर का समाचार मिला, इसलिए माता कुन्ती तथा पांचों पांडव द्रुपद-राज की राजधानी की तरफ चल दिये। वहा पहुंचकर उन्होंने एक कुम्हार के घर डेरा डाला और ब्राह्मण के वेश में अपने दिन काटने लगे। दिन मे सब भाई गाव में से भिक्षा मांगकर लाते और रात को मा-बेटे किसी तरह सिमिट-सिमटा कर कुम्हार के कोटे मे पड़े रहते।

एक दिन चारों भाई भिक्षा लेने गये थे और अर्जुन अकेला कुन्ती के पास रह गया था।

कुन्ती बोली—"अर्जुन! क्या बात है कि इन दो-चार दिनों से तू इस तरह आलसी होकर पड़ा रहता है? भिक्षा लेने के लिए भी नहीं जाता।"

"मा!" अर्जुन ने जवाब दिया, "एकचक्रानगरी में तो भीम को रोज तू अपने पास रखती थी। यहां भीम भिक्षा लेने जाता है और मैं घर रहता हूं!"

"एकचक्रानगरी की बात और थी। वहां मुझे अकेले अच्छा नहीं लगता था और भीम को अगर अकेला छोड़ देती तो वह न जाने क्या उखाड़-पछाड़ कर बैठता; पर यहां तो ऐसा कुछ है नहीं। तू सारे दिन टांग पसारे पड़ा रहे और अपने भाइयों का लाया हुआ खाये, यह मुझे ठीक नहीं लगता। अपने भाइयों का इतना तो खयाल करना ही चाहिए न?" कुन्ती बोली।

"मां! मुझपर क्या बीत रही है, यह तुम्हें और भाईसाहब को क्या मालूम?" अर्जुन बैठ गया और कहने लगा।

"ऐसी क्या तुझपर बीत रही है, जो मुझे मालूम नहीं?" कुन्ती ने कुछ सख्ती से पूछा।

"तुम कुछ नहीं जानतीं। इस प्रकार ब्राह्मण-वेश में छिपकर घूमत-फिरते कितने दिन हो गये हैं? और कोई पहचान न ले इस डर से इस कुम्हार के घर में छिपे पड़े हैं। मेरे हृदय को इससे कितनी चोट लग रही है, इसका तुम अनुभव नहीं कर सकोगी।" अर्जुन ने सिर उठाकर कहा।

"अभी तो मुझे और युधिष्ठिर को यही ठीक मालूम पड़ता है।" कुन्ती बोली।

"मा! तुम्हारा यह जवाब क्या ठीक है?" और अर्जुन गरम होकर बोला, "मां! बचपन में ऋषि-मुनियों के आश्रम में तुमने अपना दूध हमें पिलाया; जब हम पालने में सोते थे तब पाण्डु-पुत्र के रूप में ऊंची भावनाएं हमारे अन्दर भरी गईं; हस्तिनापुर के राजमहलों में राजकुमारों की तरह हम बड़े हुए; भीष्म पितामह, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, विदुर आदि महापुरुषों के वातावरण में हम जवान हुए; द्रुपद जैसे राजा को पकड़कर द्रोणाचार्य के चरणों में हमने भेंट किया। ऐसे तुम्हारे पुत्रों को दुर्योधन की ईर्ष्या के कारण इधर-उधर लुक-छिपकर मारे-मारे फिरना पड़े तब हमारे दिलों में क्या बीतती होगी, इसका तुम्हें कुछ खयाल आता है?"

"हां, आता है।" कुन्ती बोली।

"नहीं; नहीं आता।" अर्जुन तेज होकर बोलने लगा— "अगर यह खयाल आता होता, तो उस दिन भीम के कहने पर हमें वारणावत से हस्तिनापुर वापस जाने दिया होता; और तब दुर्योधन जान लेता कि पुरोचन के द्वारा पाण्डवों के जलने से पहले दुर्योधन को स्वयं स्मशान-शय्या पर सोना पड़ता है! मां, द्रोण को गुरु-दक्षिणा देने के लिए जब हम यहां आये थे तो उस पेड़ के नीचे हम पाचों भाई खड़े रह गये थे। दुर्योधन आदि जब असफल होकर वापस लौट गये, तब हमने द्रुपद पर हमला किया और उसको बांधकर गुरु के चरणों में ला रक्खा। मां! आज जब वह दिन याद आता है तब मेरे हृदय

में न जाने क्या-क्या विचार उठने लगते हैं। वही दुर्योधन आदि कल राजकुमार की हैसियत से स्वयंवर में शामिल होने को स्वर्ण के सिंहासनों पर आकर बैठेंगे, और द्रुपद की पराजय करनेवाले तुम्हारे ये वीर पुत्र गरीब ब्राह्मणों के वेश में इधर-उधर धक्के खाते होंगे और जगह पाने के लिए किसी का मुंह ताकेंगे। मां! यह बिलकुल असह्य है। बार-बार ऐसे विचार आते रहने से मन के साथ-साथ शरीर भी अपंग हुआ जा रहा है।"

"बेटा अर्जुन!" कुन्ती अर्जुन के पास आई और उसको दिलासा देती हुई बोली, "तेरे मन की व्यथा को मैं जानती हूं। तेरे अन्दर के मंथन की भी मुझे खबर है। बरसात में आकाश में बादलों का गर्जना सुनकर सिंह का बच्चा दहाड़ता हुआ पर्वतों के साथ सिर टकराकर किस प्रकार मर जाता है, यह क्या मैंने हिमालय के जंगलों में नहीं देखा?"

"मां! अकेले मुझमें ही मन्थन चल रहा हो, सो बात नहीं है। भीम का तो मुझसे भी बुरा हाल है। वह तो कहता था कि अब हमें किसी भी मौके पर दो हाथ दिखाकर प्रकट हो जाना है।"

"हां", कुन्ती ने कहा, "युधिष्ठिर भी कहता था कि अब हमें इस उलझन को हल करना होगा।"

"भाईसाहब इसका हल करें या न करें, मैं तो मौका देख ही रहा हूं। और ऐसा करते हुए हम प्रकट हो जायं तो इसका भी मुझे कोई डर नहीं है। दुर्योधन से डरकर हमेशा अंधेरे में आखिर कबतक भटकते रहना होगा? दुनिया तो समझती है कि पाण्डव लाक्षागृह में जलकर मर गये। दुर्योधन वगैरा ऐसा मान कर मूछों पर ताव देते हुए घूमें और हम अपने शरीरों को बचाते हुए इधर-उधर छिपते फिरें, यह सब अर्जुन नहीं सह सकता। मा! तू आज भाईसाहब से ये बातें साफ-साफ कह देना।" अर्जुन ने अपना निश्चय बताया।

"कल तो तुम लोग स्वयंवर में जानेवाले हो। बाद में निश्चिन्त होकर सब बातों पर विचार करेंगे।" कुन्ती ने कहा।

"मैंने तो तय कर लिया है कि मैं कल स्वयंवर में नहीं जाऊंगा।" अर्जुन बोला।

"स्वयंवर देखने के लिए ही तो खासतौर से यहां आये और उसी में न जाना, यह कैसे हो सकता है?" कुन्ती ने कहा।

"उसमें देखने जैसी क्या बात है, और उसे देखने में क्या रस है?" अर्जुन ने पूछा।

"बेटा!" अर्जुन के सिर के बालों को ठीक करती हुई कुन्ती बोली, "रस तो नहीं है यह मैं भी जानती हूँ। देश-विदेश के राजा-महाराजाओं की श्रेणी में बैठनेवाले मेरे ये बेटे दक्षिणा के भूखे ब्राह्मणों की पंक्ति में बैठें, और जब दूसरे क्षत्रियकुमार धनुष-बाण चढ़ाने के लिए तैयारी कर रहे होंगे तब मेरे पुत्र अपने हाथ मलते हुए बैठे रहेंगे, इस दुःख की मैं कल्पना कर सकती हूं। लेकिन फिर भी बेटा! कल तो स्वयंवर में जरूर हो जाना। तेरी न जाने की इच्छा हो तो भी तेरी मां कहती है इसलिए चला जाना। फिर कभी मैं तुम्हें इस तरह न भेजूंगी। समझे! तो जायगा न? जवाब दे।"

"क्या जवाब दूं मां?"

"बस, मुझे यह कहदे कि मैं जाऊंगा। बेटा, तेरी आज की बातों से मुझे बड़ी वेदना हुई है। कल के लिए तू मुझे वचन दे कि तू वहां जायगा।" कुन्ती बोली।

"अच्छा मां, कल स्वयंवर में चला जाऊंगा। लेकिन वह सिर्फ तेरी खातिर।"

"हां, मेरी ही खातिर सही।" कुन्ती ने जवाब दिया। अर्जुन उठकर बाहर चला गया और कुन्ती घर के काम में लग गई।

× × ×

स्वयंवर के मण्डप में असाधारण शान्ति थी। किसी महासागर

में आया हुआ जोरों का तूफान जलदेवता के इशारे-मात्र से जैसे शान्त हो जाता है, उसी प्रकार पहले जहां इतना शोर-गुल मचा हुआ था वहां एकदम यह शान्ति कैसी ? सिंहासन से उठकर लक्ष्य-बेध को जाते हुए जिस जरासन्ध की चाल से धरती डगमगाती थी वही जरासन्ध अपने पैर के अंगूठे से रेशमी गलीचे को खुरच क्यों रहा है ? शिशुपाल का जो सिर उसकी मनोहर गर्दन के ऊपर हमेशा स्थिर रहता था, वह आज सिंहासन के ऊपर ढला क्यों पड़ा है ? द्रौपदी के मंडप में प्रवेश करने से पहले जो दुर्योधन प्रवेश-द्वार की ओर एकटक-से देख रहा था वह अब अपने हाथ के नाखूनों को ही क्यों देख रहा है ? वैतालिकों के सुर क्यों बन्द होगये ? ब्राह्मणों के आशीर्वचन बीच में ही क्यों रुक गये ? धृष्टधुम्न की सिंह-गर्जना शान्त क्यों होगई ? द्रुपद का चेहरा पीला क्यों पड़ गया ? द्रौपदी की मदमाती सखियों की नूपुर-झंकार बद क्यों होगई ? उधर दूर बलराम के साथ बैठे हुए श्रीकृष्ण की आंखें चंचलता से अपने एकमात्र अभिन्न सखा को तलाश करती हुई अस्थिर क्यों हो उठी हैं ?

हिमालय की किसी गुफा में जहां अर्से से शान्ति का वास हो और सिंह अपनी एक ही गर्जना से उस शांति को भंग करदे इस तरह उस सभा की शान्ति को भङ्ग करता हुआ द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न बोला—"भारतवर्ष के राजाओ ! आप सब लोग जानते हैं कि मेरी यह बहन द्रौपदी यज्ञ में से उत्पन्न हुई है। आप लोग यह भी जानते होंगे कि ईश्वर के किसी गूढ़ संकेत के अनुसार ही इसका जन्म हुआ है। मेरी बहन हमारे देश के वीर क्षत्रियों के जीवन को उज्ज्वल करे, इस खयाल से मेरे पिता ने इस स्वयंवर का आयोजन किया है। आप सब दूर-दूर के देशों से इस स्वयंवर में पधारे हैं, इसके लिए मैं फिर से आपका आभार मानता हूं। लेकिन आप लोगों के यहां आने का हेतु सिद्ध नहीं हुआ, इससे मेरा हृदय बहुत दुःखी है। जरासंध और शिशुपाल जैसे शूरवीर भी इस धनुष को न झुका सके, यह देखकर

किसको दुःख न होगा ? अपनी असफलता से आप सबको भी कितना दुःख हो रहा है, यह आप लोगों के चेहरों से दीख रहा है। अब तो मुझे यह भय हो रहा है कि शायद इस सारे मंडप में मेरी बहन के हाथ का अधिकारी कोई क्षत्रिय-पुत्र मौजूद नहीं है! पर मुझे अपनी बहन का दुःख नहीं है। वह तो योग्य पति के अभाव में आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने के लिए तैयार है। लेकिन······इतने बड़े मानव-समुदाय में इस धनुष को लेकर लक्ष्य-वेध करनेवाला एक भी वीर क्षत्रिय न निकला, यह देखकर मेरा हृदय जलकर खाक हुआ जाता है। हम सब लोग क्षत्रिय-पुत्र हैं। वीरता ही हम लोगों का ईश्वर-प्रदत्त अधिकार है। हमने उस वीरता को—उस अधिकार को खो दिया है, इसका मुझे दुःख है। हे राजा-महाराजागण! सुनो, अभी भी आपमें कोई वीर-पुत्र दबा-छिपा रह गया हो तो बाहर आजाय और यज्ञ की वेदी में से उत्पन्न हुई मेरी इस बहन को स्वीकार करने की अपनी योग्यता का परिचय दे।"

कुमार धृष्टद्युम्न के मुंह से ये शब्द पूरे बाहर निकले भी नहीं थे कि दूर बैठे हुए ब्राह्मणों की मण्डली में से एक पुरुष उठ खड़ा हुआ। उसके खड़े होते ही ब्राह्मणों की मण्डली में कोलाहल मच गया।

एक ने कहा, "अरे भाई! हम लोग तो ब्राह्मण हैं। यह काम हमारा नहीं है।"

दूसरे ने कहा, "ब्राह्मण हैं तो क्या हुआ? सूतपुत्र तो नहीं हैं? परशुराम क्या ब्राह्मण नहीं थे? हस्तिनापुर के द्रोण ब्राह्मण नहीं हैं? जाओ भाई, अच्छी तरह जाओ।"

तीसरा बोला, "अरे ओ, भाई! बैठ जा, बैठ जा; शल्य जैसों का वहां बस नहीं चला तो तुझसे क्या बनेगा? उल्टे हंसी होगी और दक्षिणा मारी जायगी सो अलग।"

महासागर की प्रचण्ड लहरों के निरन्तर टकराते रहने पर भी अचल पहाड़ जैसे खड़ा रहता है उसी प्रकार इस कोलाहल के बीच

वह पुरुष खड़ा रहा। कुछ देर पहले राजा-महाराजाओं की जो आंखें निश्चेष्ट हो रही थीं, वे भी सहसा इस कोलाहल की ओर फिरीं।

आपने पहचाना इस पुरुष को? उसके चेहरे पर शुद्ध क्षत्रियत्व की छाप थी, उसकी आंखों में अनेक दिनों के अज्ञातवास पर रोष भरा हुआ था। बैल के समान उसके कन्धे थे, विशाल छाती थी, लोहे के मोटे सरियों के समान उसके हाथ थे और सिंह-जैसी उसकी चाल थी। यह पुरुष है लाक्षागृह में से जलते-जलते बच जानेवाला, जंगलों के अनेक दुःखों में भीमसेन का साथी, अज्ञातवास से ऊबा हुआ, कुम्हार के घर में ब्राह्मण के वेश में रहनेवाला कुन्ती का तीसरा पुत्र अर्जुन। कुमार धृष्टद्युम्न के वचन उसके कानों में चुभे और उन शब्दों से उसकी वीरता मानो घायल होकर जागृत होगई।

सारा मण्डप अपनी मूर्छा में से जागृत होकर अर्जुन की ओर देखे-देखे, इतने में तो वह धनुष के पास पहुँच गया और उसे हाथ में लेकर प्रत्यंचा चढ़ाकर टंकार किया। धनुष की यह टंकार सभाजनों के कानों तक पहुंचे और वे सावधान हो तबतक तो अर्जुन ने निशान पर तीर चलाया और उसे बाध दिया। ब्राह्मणों ने और धृष्टद्युम्न ने जय-जयकार किया, और लोग आख उठाकर उधर देखें इतने में तो द्रौपदी की माला अर्जुन के गले में जा पहुंची।

राजा-महाराजाओं के आश्चर्य का तो ठिकाना ही न रहा। "यह क्या जादू का कोई खेल है? हम सब सपना देख रहे हैं या सब सच है?" सब एक दूसरे की ओर देखने लगे। वे कहीं बदल तो नहीं गये हैं, इसका निश्चय करने के लिए वे अपने शरीर और वस्त्राभूषणों पर इधर-उधर हाथ फेरने लगे।

उस बीच, भीम छलांग मारकर अर्जुन के पास आ पहुंचा और युधिष्ठिर भी नकुल, सहदेव के साथ आकर उसके पास खड़े हो गये। द्रुपद राजा की आंखों में प्रेमाश्रु भर आये, और अपनी प्यारी बेटी को

छाती से लगाकर अर्जुन के पास आ खड़े हुए । कुमार धृष्टद्युम्न इन सबको लेकर दरवाजे की ओर चले ।

अचानक घायल शेर की तरह गरजकर जरासन्ध ने कहा—"ठहरो! धृष्टद्युम्न, ठहरो! यहा आये हुए राजा-महाराजाओ! सुनो। द्रुपद ने हम सब लोगों को इस स्वयंवर में निमंत्रण देकर बुलाया और अब हमीं लोगों के सामने वह अपनी लड़की एक भिखारी को देकर हमारा भारी अपमान कर रहे हैं। हमें इस अपमान का बदला द्रुपद से जरूर लेना चाहिए। या तो द्रुपद-राज स्वयं ही अपनी पुत्री को हममें से किसी को दे दें, नहीं तो हम लोगों को चाहिए कि हम सब मिलकर उसके साथ युद्ध करें और इस क्षत्रिय-कुमारी को क्षत्रिय-कुल से बाहर जाने से रोकें।"

जरासन्ध के चुप होते ही चेदिराज शिशुपाल उसका समर्थन करता हुआ बोला—"जरासन्ध जो कहते हैं वह बिलकुल ठीक है। भारतवर्ष के इतने बड़े राजा-महाराजाओ में से द्रुपद को कोई पसन्द न आया, और अन्त में एक ब्राह्मण को अपनी लड़की दी। अरे ओ ब्राह्मण! इस द्रौपदी का हाथ छोड़ दे। धृष्टद्युम्न इस शहर की किसी अच्छी ब्राह्मणी से तेरी शादी करा देंगे। यह द्रौपदी तो किसी महाराजाके अन्तःपुर की शोभा बढ़ाने के लिए पैदा हुई है, तेरे घर भीख मांगकर लाये हुए आटे की रोटिया बनाने के लिए इसका जन्म नहीं हुआ।"

कर्ण को भी ठीक मौका मिल गया, "बिलकुल ठीक है। द्रुपद की पुत्री किसके साथ ब्याह करे, यह तय करने का काम हम लोगों का है। द्रुपद अगर सीधी तरह न मानें, तो मैं अकेला उसके साथ युद्ध करने के लिए तैयार हूं। इस तरह का घोर अपमान सहकर कौन वीर अपने घर जायगा?"

जरासंध आदिकी ऐसी तीव्र और जोशीली बातें सुनकर और राजाओं की भी बहादुरी जाग्रत हो गई। कोई म्यान में से तलवार निकालने लगे; कोई अपने रथ बाहर तैयार हैं या नहीं यह देखने लगे; कोई

अर्जुन को देखकर दांत किटकिटाने लगे, तो कोई मन-ही-मन द्रौपदी को ही भला-बुरा कहने लगे।

दूसरी ओर ब्राह्मण आनन्द से नाचने लगे, और उनमें जो जवान थे वे लड़ने के लिए तैयार भी होगये।

कुन्ती-पुत्र अर्जुन, इस बीच, इस सब विरोध की जरा भी परवा न करते हुए द्रौपदी के साथ अपनी धीर-गति से दरवाजे की तरफ चला जा रहा था, मानो कोई मस्त हाथी कुत्तों के भौंकने की परवा न करते हुए अपनी सूँड़ को हिलाता हुआ जारहा हो।

बेचारे द्रुपद तो यह सब देखकर एकदम सन्न रहगये। "बेटा धृष्टद्युम्न! बेटी द्रौपदी कहाँ गई? मेरी बेटी ने जिसे वरमाला पहनाई, मैं तो उसका नाम भी नहीं जानता। बेटा! तू इन राजाओं को शान्त कर। ये सब अगर हमारे साथ युद्ध करने लगेंगे तो मैं क्या करूंगा? बेटी द्रौपदी जरा खड़ी तो रह।"

इस प्रकार बोलते हुए द्रुपद अर्जुन के पीछे पहुंचे और द्रौपदी से कहने लगे—"बेटी द्रौपदी! तुझे अपना योग्य पति तो मिला, लेकिन तेरे इस पिता के तो दुःख का पार नहीं है। ये सब राजा-महाराजा मुझे और तेरे भाई को किस तरह धमका रहे हैं, यह तू सुन रही है न?" बोलते-बोलते द्रुपद की आँखों में पानी भर आया।

अर्जुन ने द्रुपद को सान्त्वना देते हुए कहा—"महाराज! आपको जरा भी घबराने की जरूरत नहीं। मैं अकेला ही इन सब राजाओं के साथ युद्ध करने को तैयार हूं। आप सब यहाँ से हट जाइये।"

अर्जुन बोल ही रहा था, इतने में भीम आगे आया—"महाराज द्रुपद! अब आप तमाशा भर देखें। इन सब महाराजाओं को द्रौपदी नहीं मिली तो क्या, मेरे हाथ का मजा जरा उन्हें चख ही लेने दें। आप जरा भी चिन्ता न करें।"

यहाँ इस तरह की बातें हो ही रही थीं, इतने में क्रोधसे भरे हुए शिशु-

पाल आदि राजा उनके पास आ पहुँचे और मानो एक-दूसरे को युद्ध का आह्वान करते हों, इस प्रकार सब बाहर निकल पड़े।

नकुल और सहदेव को लेकर युधिष्ठिर अपने मुकाम पर चले गये, इधर अर्जुन और भीम की राजाओं से लड़ाई छिड़ गई। अर्जुन ने स्वयंवर वाला धनुष हाथ में लेकर कर्ण के सामने मोरचा बांधा और उसे घायल करके लड़ाई में से भगा दिया। भीमसेन पास के एक पेड़ को उखाड़ लाया और सबसे भिड़ पड़ा। उसने जरासंध, शिशुपाल, शल्य आदि को मार भगाया। अर्जुन और भीमसेन का यह युद्ध थोड़ी देर तो अच्छी तरह चला, पर कोई भी राजा ज्यादा देर तक उनका सामना नहीं कर सका, और एक के बाद एक सब भागकर अपने-अपने मुकाम को चले गये।

अन्त में मानो सब राजा-महाराजाओं की इज्जत बचा रहे हों इस प्रकार एक राजा कहने लगा, कि "जो पुरुष इतने राजाओं के सामने अकेला टिक सकता है और कर्ण जैसों को घायल करके मार भगाने की हिम्मत रखता है, वह अवश्य क्षत्रिय-वीर होना चाहिए। द्रौपदी सच्चे क्षत्रिय से ही ब्याह करे, यही हम चाहते थे। हमें विश्वास होगया है कि यह जो-कुछ हुआ है वह ठीक ही हुआ है। इस कारण अब इस युद्ध को ज्यादा बढ़ाने की जरूरत नहीं है।"

संग्राम में शत्रुओं के अपने-आप अदृश्य होजाने पर अर्जुन और भीमसेन द्रुपद की आज्ञा लेकर अपने डेरे की ओर चलने लगे। पाञ्चाल-पुत्री उनके पीछे-पीछे चली जा रही थी।

अपनी प्यारी बहन को दरवाजे तक पहुंचाकर वापस लौटते हुए धृष्टद्युम्न मन में सोचने लगा, "ये लोग कौन होंगे? कहां जा रहे होंगे! वीर धृष्टद्युम्न की बहन किनके पाले पड़ी! मेरे शहर में तो किसी ब्राह्मण के ऐसे पुत्र हैं नहीं। समझ में नहीं आता कि ईश्वर की क्या माया है!"

: ३ :

अर्जुन का बनवास

द्रौपदी के साथ पांचों पाण्डवों का ब्याह होगया और श्रीकृष्ण भात देकर द्वारिका चले गये। धृतराष्ट्र के बुलाने पर पाण्डव वापस हस्तिनापुर गये और वहां से थोड़ी ही दूर पर इन्द्रप्रस्थ में अपनी राजधानी स्थापित करके रहने लगे। कुन्ती तथा द्रौपदी भी उनके साथ ही रहती थीं।

एक बार नारद इन्द्रप्रस्थ आये। महाराज युधिष्ठिर ने अर्घ्यादि से उनकी पूजा की और पांचों भाई तथा द्रौपदी उनके चरणों के पास आकर बैठ गये।

"महाराज युधिष्ठिर! सब कुशल तो है न?" नारद ने पूछा।

"मुनिराज! यहां पधारकर आज आपने मुझपर बड़ा अनुग्रह किया है।"

"पाञ्चाली-पुत्री! इन्द्रप्रस्थ का जीवन तुम्हें अनुकूल पड़ा या नहीं?" द्रौपदी की ओर देखकर नारदजी बोले।

"महाराज! ऐसा प्रश्न आप क्यों कर रहे हैं?" द्रौपदी ने सहज ही ही शरमाते हुए कहा।

"बेटी द्रौपदी! खासतौर से इसलिए, कि विवाह होने के पहले विवाहित जीवन जितना मनोहर मालूम होता है उतना मनोहर विवाहित जीवन की पहली रात बीतने के बाद नहीं मालूम पड़ता, ऐसा मनुष्यों का अनुभव है।" नारद ने जवाब दिया और युधिष्ठिर से पूछा, "क्यों युधिष्ठिर! ठीक है न?"

"मुनिराज! आपकी बात तो बिलकुल ठीक है। लेकिन ईश्वर की कृपा से हम भाइयों में इतनी एकता है, और पाञ्चाल-पुत्री इतनी शील-सम्पन्न हैं कि हमारे व्यवहार में जरा भी कटुता पैदा नहीं होती।" युधिष्ठिर बोले।

"यह तुम लोगोंका सद्भाग्य है।" नारदने कहा, "फिर भी युधिष्ठिर! एक सलाह देना चाहता हूं।"

"सलाह क्यों, आपको तो आज्ञा देने का अधिकार है।" युधिष्ठिर ने हाथ जोड़ कर पूछा, "कहिए, क्या आज्ञा है महाराज ?"

"तुम सब आजतक माता कुन्ती के स्नेह की शीतल छाया में बड़े हुए हो और खाते-पीते, सोते बैठते एकसाथ रहे हो, इसलिए तुम्हारे अन्दर फूट पड़ने का डर तो नहीं है।" नारद जी बोले।

"फिर क्या बात है, महाराज ?" युधिष्ठिर बीच ही में बोल उठे।

"फिर भी," नारद अपनी बातें जारी रखते हुए बोले, "कामवासना बुरी चीज है।"

"पर हमारे अन्दर फूट किस तरह पड़ जायगी ?" भीमसेन बोला।"

"भीमसेन ! तुम जो कहते हो वह ठीक है, पर काम जब फूट डालने की शुरुआत करता है तब वह मनुष्य की आंखों में जहर डाल कर दूर हट जाता है। फिर तो वह जहर वाली दृष्टि अपने-आप सब कर लेती है।" नारदजी ने खुलासा किया।

"लेकिन हम लोग उसको मौका दें तब न ?" भीमसेन बोला।

"कामदेव ने एक बार आंख में विष डाला कि बस फिर तो एक जरासे तिनके से भी हलके और क्षुद्र कारण वेदों से भी ज्यादा वजनी मालूम होने लगते हैं, और नित्य-प्रति साथ-साथ खाने-पीने, उठने बैठने वाले एक मां के जाये दो सगे भाइयों में भी फूट डाल देते हैं। और फूट भी ऐसी कि जिसमें एक-दूसरे की जान तक ले लेने को तैयार हो जाते हैं।" नारद जी ने विस्तार से कहा।

"तो आपकी क्या आज्ञा है ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"इसलिए," नारदजी ने गम्भीरता के साथ कहा, "मेरी ऐसी सलाह है कि तुम्हारी आंखों में द्रौपदी के कारण ऐसा परिवर्तन आवे उससे पहले तुम्हें द्रौपदी के साथ के अपने सम्बन्धों को व्यवस्थित कर लेना चाहिए।"

"आपकी राय में किस तरह की व्यवस्था करने से हम लोगों में आपस में प्रेम बना रह सकता है ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"तुम पांचों भाइयों को एक प्रतिज्ञा के बन्धन में बंध जाना चाहिए।"

"कैसी प्रतिज्ञा ?" युधिष्ठिर ने पूछा ।

"तुम्हें ऐसा कड़ा नियम बना लेना चाहिए कि जब तुममें से कोई द्रौपदी के साथ एकान्त मे बैठा हो तो दूसरा वहां न जाय।" नारदजी ने कहा।

"महाराज ! मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"इस प्रकार नहीं जाना चाहिए, यह तो मुझे भी मंजूर है। लेकिन मान लो कोई ऐसे चला गया, तो ?" भीम ने पूछा।

"तो फिर उसे प्रतिज्ञा-भंग का प्रायश्चित्त करना चाहिए।" नारदजी ने कहा।

"अगर धर्म-बुद्धि से प्रतिज्ञा का पालन करना हो, तो उसको भंग करने का विचार ही नहीं उठता। फिर भी अगर हमारी कमजोरी से उसका भंग हो जाय तो उसकी शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त तो करना ही चाहिए। क्यों ठीक है न अर्जुन ?" युधिष्ठिर बोले।

"जरूर ! प्रतिज्ञा तो प्रतिज्ञा ही है। अपना सिर देकर भी उसका पालन करना चाहिए। यही हमारा निश्चय हो। अगर उसे न पालना हो तो न लेना ही ठीक है। और अगर लेना है तो उसे छोड़ना नहीं चाहिए।" अर्जुन बोला।

"लेकिन अगर हम प्रतिज्ञा न लें पर मन में यह सब दृढ़ निश्चय करलें कि हम इस प्रतिज्ञा के अनुसार ही अपना आचरण रक्खेंगे, तो कैसा ?" सहदेव ने प्रश्न किया।

धर्मराज बोले—"भाई सहदेव ! तुम जो कहते हो वह ठीक नहीं है। मनुष्य चाहे जितना दृढ़ हो, फिर भी है तो वह हाड़-मांस का पुतला ही। मनुष्य कितनी ही दृढता से निर्णय करे फिर भी उसकी गहराईमें खोखला-पन रही जाता है; इस कारण ऐन मौके पर मनुष्य का निर्णय इस तरह टूट जाता है कि जिसकी वह कल्पनाभी नहीं कर सकता और वह कहीं-का-

कहीं जा गिरता है। मनुष्य के हृदय की गहराई में इस प्रकार का खोखलापन न रहने देना हो, तो प्रतिज्ञा लेना ही एक-मात्र मार्ग है।"

"तो ठीक, मैं प्रतिज्ञा लेने को तैयार हूं।" सहदेव बोला।

"भगवान् नारद जहां उपस्थित हों वहां मैं प्रतिज्ञा लेने के लिए तैयार हूं।" भीम ने कहा।

"तो महाराज युधिष्ठिर! सबसे पहले तुम प्रतिज्ञा लो और बाद में ये चारों भाई।" नारदजी बोले।

धर्मराज युधिष्ठिर नारदजी को नमन करके खडे हुए और अञ्जलि में पानी लेकर बोले—"हम पांच भाइयों में से किसी एक के साथ एकान्त में अगर द्रौपदी बैठी हो तो वहां मैं नहीं जाऊंगा, और गया तो मुझे बारह वर्ष का वनवास भोगना होगा। भगवान नारदजी को साक्षी रखकर मैं यह प्रतिज्ञा करता हूं।"

इतना कहकर युधिष्ठिर ने अञ्जलि का जल छोड़ दिया और बैठ गये।

उसके बाद क्रमशः भीमसेन, अर्जुन, सहदेव और नकुल ने इसी प्रकार प्रतिज्ञा ली। पाण्डवों की प्रतिज्ञा लेने की विधि समाप्त हो जाने के बाद नारदजी सबको आशीर्वाद देकर बिदा हुए।

\+ \+ \+

"भाई अर्जुन! तुम इस प्रकार जरा-सी बात के कारण हम लोगों को छोड़कर जाते हो, यह मेरी समझ में नहीं आता।" युधिष्ठिर ने कहा।

"भाई साहब! आप क्या कहते हैं? जरा-सी बात है? अभी उस दिन ही तो हम सबने प्रतिज्ञा ली थी—और वह भी नारदजी की उपस्थिति में। और आज ही उस प्रतिज्ञा का भंग करें तो कैसे काम चलेगा?" अर्जुन बोला।

"लेकिन अर्जुन! तुमने प्रतिज्ञा का भंग किया ही नहीं।" युधिष्ठिर ने कहा।

"भाई साहब ! अच्छे-अच्छे आदमी ऐसे संकट के मौकों पर जब भूल कर जाते हैं तब भी आपकी धर्मबुद्धि जागृत रहती है। पर आज मैं देखता हूं कि मेरे प्रति आपका जो स्नेह है वह आपको कुछ भुलावे में डाल रहा है।" अर्जुन बोला।

"अर्जुन ! चोरों द्वारा ब्राह्मणों की गायें चुरा ले गये तो उनका पीछा करने को तुम शस्त्र लेने को, मैं और द्रौपदी जहां बैठे हुए थे, वहां तुम चले आये। पर इसके सिवा कोई उपाय भी तो नहीं था। क्योंकि जिस कमरे में हम बैठे हुए थे, उसी में हम लोगों के सब शस्त्रास्त्र रक्खे हुए थे। ब्राह्मणों की गायों की रक्षा करने के लिए तुम शस्त्रों को लेने कमरे में दौड़े आये, उससे तो प्रतिज्ञा भंग के बजाय हमारे क्षत्रिय-धर्म की रक्षा हुई है। इसमें क्या हमारे राजधर्म का पालन नहीं हुआ ? इससे हमारी प्रतिज्ञा के अक्षरार्थ का भंग हुआ होगा, लेकिन उसकी भावना की तो रक्षा ही हुई है।" भीमसेन बोला।

"भाई भीमसेन ! हमारी प्रतिज्ञा के अक्षरार्थ और भावार्थ की जो कल्पना तुम्हारे ध्यान में है वह मेरे भी ध्यान में है। पर मैं तो सिर्फ एक ही बात जानता हूं। वह यह कि जब हम लोगों ने प्रतिज्ञा ली, उस समय ऐसे प्रसंगों का अपवाद उसमें शामिल नहीं किया था।" अर्जुन ने कहा।

"उस समय हमें यह सूझा नहीं था इसलिए रह गया।" भीमसेन बोला।

"प्रतिज्ञा सचमुच जीवन की एक बड़ी गम्भीर बात है, और जीवन की उन्नति के लिए उसका ठीक-ठीक उपयोग करना हो तो मनुष्य को प्रतिज्ञा लेने से पहले ही उसके चारों ओर जितनी बाड़े-बन्दी करनी हो कर लेनी चाहिए।" अर्जुन ने कहा।

"लेकिन उस समय न सूझे तो ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"उस समय न सूझे तो फिर प्रतिज्ञा तोड़ने के प्रायश्चित्त से बचने के बहाने खोजने के बजाय प्रतिज्ञा-भंग के प्रायश्चित्त का खुशी से स्वागत करना चाहिए। भाई साहब ! धर्म का यह रहस्य तो आपने ही हमें

सिखाया है, फिर आज स्नेह के वश होकर इस तरह क्यों पूछ रहे हैं ?" अर्जुन ने पूछा।

"अर्जुन ! आज तूने मुझे हरा दिया। तू खुशी से जा भाई ! भगवान् तेरी रक्षा करें।" यह कहकर युधिष्ठिर ने अर्जुन का सिर सूंघा और आशीर्वाद दिया।

"देवी ! आज्ञा चाहता हूं।" अर्जुन ने द्रौपदी से विदा मांगी।

"शब्दों में व्यक्त न होनेवाले ऐसे स्नेह-तन्तु से तुमने मुझे बांध लिया है। आज उस तन्तु की खींचतान से मुझे आघात पहुंचता है। मैं तुम्हारे वनवास का निमित्त बनी, मन में यह विचार आने पर हम लोगों का भविष्य मेरी नजरों के सामने खड़ा हो जाता है और तुम लोगों को मैं न जाने कैसे-कैसे दुःखों में तपाने का कारण बनूंगी, इस विचारमात्र से मेरा जी भारी हो जाता है।" यह कहते-कहते द्रौपदी की आंखें भर आईं।

"देवी ! जी छोटा न करो। जीवन की कड़वी घूंटों में भी ईश्वर किस तरह अमृत छिपा रखता है, यह किसे मालूम है ?" अर्जुन बोला।

"अर्जुन ! जाओ ! जगदम्बा तुम्हारी रक्षा करें।" द्रौपदी ने विदाई दी।

"भीमसेन ! जाता हूं।"

"अर्जुन ! तू तो चला, लेकिन मेरी जोड़ी तो टूट रही है !" भीम बोला।

"भीमसेन ! हम लोग महीनों से ऐसी यात्रा का विचार तो कर ही रहे थे। गुरु द्रोण ने हमें अस्त्र-विद्या तो सिखाई, लेकिन राजकुमार को शोभा देने योग्य देश-परिचय तो बिल्कुल दिया ही नहीं।" अर्जुन बोला।

"बेचारे द्रोण ने स्वयं ही देश-दर्शन कहां किया है ?" भीम ने कहा।

"आज देश-परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य पहले मुझे मिल रहा

है, इससे आनन्द होता है। भीमसेन! महाराज युधिष्ठिर को भारतवर्ष के चक्रवर्ती पदपर स्थापित करने के स्वप्न तो तुम और मैं दोनों देखते हैं। लेकिन हमने भारत के अनेक भागों का भ्रमण तो किया ही नहीं है। देश-देशान्तर के वृक्ष, पत्ते, नदी, समुद्र, पहाड़ आदि तो देखे ही नहीं हैं। भारत के भिन्न-भिन्न मनुष्यों को देखा नहीं है, उनके अनेक समाजों, उनके रीति-रिवाज, धर्म, स्थिति आदि को हम जानते ही नहीं हैं। हस्तिनापुर की अस्त्रशाला की खिड़कियों के चारों ओर जो दुनिया दिखाई देती है उससे विशाल दुनिया चारों ओर मौजूद है, उसका प्रत्यक्ष दर्शन तो हमने किया ही नहीं है। इस तरह हम भारतवर्ष के हृदय पर किस प्रकार साम्राज्य स्थापित कर सकेंगे?"

"अर्जुन! तेरी बातें तो बहुत ठीक हैं। तो मुझे भी साथ लेता चल न?" भीम ने कहा।

"आज नहीं। तुम अगर यहां न रहोगे तो भाईसाहब को असुविधा होगी। यों तो हम लोग साथ ही निकलने का विचार करते थे; लेकिन मुझे यह मौका जो मिला है उसमें जितना हो सकेगा उतना भ्रमण मैं कर लेना चाहता हूं। मैं जब वापस आऊंगा तब फिर तुम्हारी बारी आयगी।" अर्जुन ने जवाब दिया।

"अच्छा भाई, जा। लोकपाल तेरी रक्षा करें।" भीम ने आशीर्वाद दिया।

"भाई, नकुल, सहदेव! मैं जाता हूं।" अर्जुन ने उनसे बिदा मांगी।

"भाईसाहब! हम आपसे क्या कहें? आपके बिना हमें तो सब सूना-सा लगेगा। जल्दी ही वापस आना। देश-विदेशों में जो-कुछ नई चीजें दीखें वे हमारे लिए लेते आयें।" दोनों ने अर्जुन को नमस्कार किया।

यह हो ही रहा था, इतने में माता कुन्ती भी वहां आ पहुंची। अर्जुन ने कुन्ती के पास जाकर सिर नवाया, माता आज्ञा दो।"

आंखों के आंसू पोछती-पोछती कुन्ती बोली—"बेटा अर्जुन ! इस आखिरी समय मे दुःख मानने से क्या होगा ? अभी ठिकाने से थोड़ी देर शान्ति से बैठ भी नहीं पाये थे कि फिर बारह वर्ष का वनवास ! तेरा जीवन क्या इस वनवास के ही लिए बना है ? खैर, बेटा ! जा, अब तेरा यह वल्कल मुझसे देखा नही जाता ! देवराज इन्द्र तेरी रक्षा करें।"

धड़कते हुए हृदय और कांपते हुए हाथों से कुन्ती ने अर्जुन का सिर अपनी छाती से लगाया, सूंघा और उसे आशीर्वाद दिया। थोड़ी देर के लिए उसे चक्कर आने लगा, लेकिन तुरन्त ही वह सावधान हो गई। और सबसे बिदा लेकर और सबको धीरज बंधाता हुआ सबके हृदयों में न जाने क्या-क्या विचार जगाता हुआ सबको स्नेह की निगाह से देखता हुआ, अर्जुन बारह वर्ष के वनवास को निकल पड़ा।

: ४ :

"यह कैसा तुम्हारा कुलधर्म ?"

इन्द्रप्रस्थ के महल में एक कमरे के अन्दर द्रौपदी और अर्जुन बातें कर रहे थे। अर्जुन के सामने की दीवार पर एक बड़ा शीशा टंगा हुआ था।

"देवी पांचाली, आज तो तुम्हारा मन प्रसन्न है न ?" अर्जुन ने पूछा।

"प्यारे अर्जुन ! बारह वर्ष बाद आज अपने अर्जुन को सुरक्षित वापस लौटते देख ऐसी कौन अभागिन होगी जो खुश न होगी। फिर तुम तो देश-देशान्तर से मेरे लिए नई-नई चीजें भी लाये हो, तब भला मेरी खुशी का पूछना क्या ?" द्रौपदी ने कहा।

"देवी क्षमा करो। वनवास के लिए रवाना हुआ तब सहदेव ने मुझसे नई-नई चीजें लाने के लिए खासतौर से कहा था। लेकिन आखिर कितनी चीजें लाता ? और लाने में झंझट भी कितना था।

इसलिए, देवी, तुम्हारे लिए मैं कुछ भी न ला सका, इसका मुझे दुख है।" अर्जुन ने दीनता के साथ कहा।

"झूठ मत बोलो अर्जुन!" द्रौपदी ने जरा नाराज होते हुए कहा, "कुछ कैसे नहीं लाये? ऐसी तो सुन्दर ग्वालिन लाये हो! कैसी अच्छी उसकी पोशाक है! लाल रंग की उसकी ओढ़नी और बढ़िया छींट के लहंगे में वह कैसी सुन्दर लगती है! कौन जाने उसकी सुन्दरता और उसके श्रीकृष्ण की बहन होने के कारण ही तो मेरा क्रोध नहीं मिट गया है। अर्जुन! शीशे में क्या देख रहे हो, मेरी तरफ देखो न?"

"सामने क्या देखूं? तुम सुभद्रा के लिए कह रही हो। पर सुभद्रा तो तुम्हारी दासी बनकर रहने के लिए आई है।" अर्जुन बोला।

"वह तो कभी की मेरे पैर छूकर चली गई। और कह भी गई कि 'मैं तो तुम्हारी दासी हूं।' वह तो श्रीकृष्ण की बहन है न? भला मोर के पंखों पर कहीं कारीगरी की भी जरूरत होती है? पर तुम तो फिसल गये न?" द्रौपदी ने कहा।

"पांचाली! द्वारिका से मैं तथा श्रीकृष्ण यादवों का मेला देखने के लिए रैवतक पर्वत पर गये थे, वहीं मेरी नजर उस पर पड़ी।" अर्जुन बोला।

"नजर क्यों पड़ी?" द्रौपदी की आंखें चढ़ गईं।

"नजर पड़ी सो पड़ी। देवी! तुम्हें यह मालूम है न, कि हम पुरुषों की नजर जब इस प्रकार पड़ जाय तो फिर हटाये नहीं हटती?" अर्जुन बोला।

"मुझे भला यह क्यों मालूम हो? मैं कोई पुरुष तो हूं नहीं। मैं तो स्त्री हूं, इसलिए मेरी नजर ऐसी जगह पड़ती ही नहीं यह मैं जरूर जानती हूं। यह अधिकार तो तुम पुरुषों ने ही अपने लिए रख छोड़ा है!" द्रौपदी ने व्यंग्य से कहा।

"देवी ! ऐसा कहती हो तो यही सही। नजर जो पड़ गई। वह तो अब न पड़ी जैसी होने वाली है नहीं।" अर्जुन का स्वर भी कुछ कठोर हो गया।

"इन बारह वर्षों में ऐसी कितनी नजरें पड़ी हैं?" द्रौपदी ने पूछा।

"जितनी पड़ी होंगी उतनी सब तुम्हारे सामने आ जावेंगी।" अर्जुन ने भी उड़ाऊ जवाब दिया।

द्रौपदी तुरन्त अकड़कर बोली, "मुझसे कुछ छिपा नहीं है। सुभद्रा आकर सब बता गई है। मेरी नाग-बहन कहां है?"

अर्जुन याद करता हो इस तरह सिर खुजलाता हुआ बोला, "कौन, उलूपी।"

"नाम तो तुम जानो। मैं कोई ब्याह में मौजूद थी, जो नाम जानती?" द्रौपदी ने कहा।

"हां, उलूपी ही उसका नाम है। पर वहां तो मैं एक ही रात रहा था?" अर्जुन ने बतलाया।

"तो उलूपी को उसके पिता के यहां छोड़ आये?" द्रौपदी ने पूछा।

"हां, वह वहीं रहेगी।" अर्जुन ने संक्षेप में कहा।

"और भी कोई रह गई है?" द्रौपदी ने जोर देकर पूछा।

"बस, उलूपी का ही जिक्र करना भूल गया था।" अर्जुन कुछ छिपाता हुआ-सा बोला।

"और दूसरी भी तो कोई है?" द्रौपदी ने प्रश्न किया।

"दूसरी? दूसरी यही उलूपी और कौन?" अर्जुन बोला।

"दूसरी नहीं, तीसरी। कोई मणिपुर नामका शहर है न?" द्रौपदी ने पूछा।

"हां, है तो।"

"वहां कौन है ? जैसे बिलकुल भूल ही गये हो !" द्रौपदी मजाक करती हुई बोली ।

"अरे हां ! चित्रांगदा; चित्रवाहन राजा की पुत्री ! उसकी तो याद ही नहीं रही थी ।" अर्जुन कुछ याद करता हुआ-सा बोला ।

"याद क्यों रहे ? मणिपुर में सिर्फ एक हजार रात ही तो रहे और सिर्फ एक ही पुत्र हुआ, इसलिए भूल जाना स्वाभाविक ही है !" द्रौपदी ने और मजाक किया ।

"हां, चित्रांगदा भी वहीं रहेगी । बभ्रुवाहन बड़ा होने पर आये तो भले ही आ जाय ।" अर्जुन ने कहा ।

अब द्रौपदी से न रहा गया । वह तनकर अर्जुन के सामने बैठ गई और कहने लगी—"अर्जुन ! कुन्ती के उदर से पैदा हुए अर्जुन ! यह तुम निश्चय समझना कि तुम्हारे बनवास से सुरक्षित लौटने पर मुझे जितनी खुशी हुई है उतनी और किसी को न हुई होगी । लेकिन इन बारह वर्षों मे तुम जो तीन नई गांठें बांध लाये हो, उससे मेरे दिल में क्या बीत रही होगी, इसका तुमने कोई खयाल किया है ? सुभद्रा तो श्रीकृष्ण की बहन इसलिए मेरी भी बहन ही है । लेकिन तुम पुरुष लोग ज्यों-ज्यों नई गांठें बांधते जाते हो त्यों-त्यों पुरानी गांठें ढीली होती जाती हैं, यह खयाल जरूर रखना ।"

अर्जुन द्रौपदी को शान्त करता हुआ बोला—"देवी ! क्रोध मत करो । जो होगया वह तो हो ही गया ।"

"इतना तो मैं भी समझती हूं अर्जुन !" पर अपनी छाती को चीरकर बताऊं तो तुम्हें पता चले कि वहां इस समय कैसा तूफान उठ रहा है ।" द्रौपदी बोली ।

"मैं उसकी कल्पना कर सकता हूं ।" अर्जुन ने कहा ।

"तुम कैसे कल्पना कर सकते हो ?" द्रौपदी गरम हो उठी, "ईश्वर ने ऐसी कल्पना से तुम पुरुषों को बांझ बनाया है । तुम पुरुष तो हमें अपनी वासना के यंत्र समझते हो । तुम्हारे लेखे तो हमारे न मन होता

है न हृदय; न बुद्धि होती है न मानापमान का खयाल। हमारी तो तुमने ऐसी स्थिति बनादी है कि जब तुम चाबी दो तब हम बोलें-चालें और उछल-कूद मचायें, पर जब चाबी निकाल दो तो जहां-की-तहां पड़ी रहें। क्यों, बोलते क्यों नहीं ?"

"देवी ! तुम तो हमारे कुल की भूषण हो !" अर्जुन ने कहा।

"हां, आभूषण तो है ही। पर तभी जबतक कि वह तुम्हें अच्छा लगे। एक आभूषण पुराना हुआ नहीं कि तुम उसे पिटारी में रखकर नया खरीद लो, इसी तरह के आभूषण न ?" द्रौपदी ने कटाक्ष किया।

"देवी ! इस समय तो तुम जो कहो वह सब सुनने को मैं तैयार हूं।" अर्जुन बोला।

"सुनोगे नहीं तो जाओगे कहां ? पर अर्जुन, सहन तो मुझे करना पड़ता है न ? आर्यों में किसी स्त्री के पांच पति होना सुना है ? फिर मैं तो ठहरी द्रुपद की पुत्री और वीर धृष्टद्युम्न की बहन। अपनी कुल-परम्परा छोड़कर और अपनी सगी मां के कहे पर ध्यान न देकर मैंने तुम पांचों के साथ शादी की। अर्जुन ! तुम सब भाइयों के स्नेह की भूखी होकर मैंने तुम्हारे कुलधर्म के अनुसार आचरण किया। तुम पांचों भाइयों के बीच रहकर और तुम्हारी वासनाओं को तृप्त करते हुए भी तुम लोगों में कोई भेदभाव पैदा किये बगैर मैं तुम्हारा घर चला रही हूं। इसमें मेरी क्या गत होती है, यह तुम्हें क्या मालूम ? माता कुन्ती के पांचों पुत्रों में एका बना रहे इसका मुझ पर कितना भार होगा, इसका भी तुम्हें कुछ खयाल है ?" द्रौपदी ने पूछा।

"जरूर है।" अर्जुन ने कहा।

"नहीं है। तुम सब भाइयों को मुझे एकसे संतोष नहीं हुआ, इसी से दूसरे-तीसरे ब्याह करने के लिए दौड़ते फिरते हो, मुझे तो यही मानना चाहिए ?" द्रौपदी ने कहा।

"देवी ! ऐसी बात नहीं है। हमारे कुल में पुरुषों के एक से

अधिक स्त्रियों के साथ ब्याह करने का रिवाज है, इसलिए इससे तुम्हें बुरा न मानना चाहिए।"

"मैं तो बाबा, हारी तुम्हारे कुल-धर्म से ! एक स्त्री से पांच पुरुष विवाह करें, तब कहो कि 'यह हमारे कुल का रिवाज है।' और एक पुरुष अनेक स्त्रियों से विवाह करे तब भी वह 'कुल-धर्म' ! भला यह कैसा तुम्हारा कुल-धर्म है ? अर्जुन ! आज तुम आर्य लोगों के बीच रह रहे हो। स्त्री के विवाह किये हुए पति से पुत्र उत्पन्न न हो तो दूसरे पुरुष से पुत्र उत्पन्न करे, पति मर गया हो तो पर-पति के साथ नियोग करे, एक पुरुष अनेक स्त्रियों को ब्याहे या एक स्त्री अनेक पुरुषों से विवाह करे—ऐसे अनेक रीति-रिवाज आर्य लोगों में पहले किसी जमाने में थे। लेकिन तुम्हें समझना चाहिए कि सुसंस्कृत आर्य इन रिवाजों से मुक्त होते जाते हैं। जब संस्कारी आर्य एक पतिव्रत और एक पत्नीव्रत का शुद्ध आदर्श स्वीकार करने लगे हैं, तब पांचसौ वर्ष पुराने विवाह के जंगली रिवाजों को कुल-धर्म के नाम से पकड़े रहोगे तो तुम्हारा और तुम्हारे कुल का पतन होगा और आर्य तुम्हें पामर समझेंगे। अर्जुन ! आज जितनी समझ मुझमें है उतनी जिस दिन तुमसे विवाह किया उस दिन होती, तो जैसे भी होता मैं तुममें से किसी एक के साथ ही विवाह करती और पाण्डवों के कहे जानेवाले इस कुल-धर्म का खात्मा कराती।" द्रौपदी ने कहा।

"देवी, देवी ! आज तुमने मेरी आंखें खोल दो।" अर्जुन ने कहा।

"तुम पुरुष आंखें मूंदकर चाहे जिससे और चाहे जितने विवाह करते रहो और मैं कुछ न बोलूं, तो फिर मैं तुम्हारी स्त्री कैसी ? अर्जुन ! जो-कुछ कह रही हूं उसके लिए माफ करना। पर गनीमत यही है कि तुम्हें द्रौपदी जैसी आर्य-स्त्री मिली है। दुनियां में आर्य-स्त्री न होतीं तो तुम्हारे-जैसे पुरुष विवाहित जीवन को पशु-जीवन-सा बनाने में जरा भी न हिचकिचाते।" द्रौपदी ने कहा।

"देवी ! तुम जो-कुछ कहती हो वह सब ठीक है। पर आज तो मैं

जो भूल कर चुका हूं वह अब मिथ्या नहीं हो सकती। अब मेरी भूलों की अगर तुम और छानबीन करोगी तो सुभद्रा अपने मन में और दुःखी होगी। गलती अगर किसी की है तो वह मेरी है, और उसका फल मुझे मिलना चाहिए।" अर्जुन दीन स्वर में बोला।

"अर्जुन! मैं द्रुपद की पुत्री हूं। सुभद्रा को मैंने अपनी बहन कहा है, वह कोई दिखावे के लिए नहीं। वह बेचारी तो मेरी ही तरह आई है। मेरा रोष तो तुम सब पर है।" द्रौपदी ने कहा।

"सब पर नहीं, बल्कि अकेले मुझ पर।" अर्जुन बोला।

"नहीं, युधिष्ठिर पर भी है; क्योंकि तुम जब सुभद्रा का हरण करने वाले थे उससे पहले तुमने युधिष्ठिर की सलाह मांगी थी, यह मैं जानती हूं।" द्रौपदी ने कहा।

"और भाई साहब ने उसकी आज्ञा भी तो दे दी थी।" अर्जुन बोला।

"हां, कोई भी रिवाज जब लम्बे अर्से से जारी हो तो उस रिवाज के पीछे चाहे जैसा अधर्म छिपा होने पर भी वह पुराने रिवाज के नामपर समाज में अपनी प्रतिष्ठा करा लेता है। और सर्वसाधारण तो रिवाज के इस पुरानेपन को ही इसकी योग्यता का प्रमाणपत्र मान लेते हैं। युधिष्ठिर महाराज भी इस कहे जाने वाले कुलधर्म से ऊपर उठकर विवाह का विचार न कर सके, इसलिए उस कुम्हार के घर में मेरे पिताजी से कह दिया कि 'यह तो हमारा कुल-धर्म है' और तुम्हें भी सुभद्रा के लिए आज्ञा दे दी। पर अर्जुन! अब मेहरबानी करके अपनी प्रजा को ऐसे कुल-धर्म से बचाना। मैं तो यही चाहती हूं कि यह कुलधर्म अब यहीं पर खत्म हो जाय और पाण्डवों की संतानों के लिए नया सुसंस्कृत कुल-धर्म बने।" द्रौपदी ने अर्जुन के हाथ जोड़े।

"देवी! मुझे लज्जित न करो। आज तो मैं तुम्हारी वन्दना करना चाहता हूं।" अर्जुन विनयपूर्वक बोला।

"अर्जुन! मेरी वन्दना मत करो। मैंने अगर तुम्हारी भूल बताने

के लिए ही वह सब कहा होता तब तो और बात थी; पर मैंने तो शायद बहुत ज्यादा कठोर बातें कहीं हैं। लेकिन प्यारे अर्जुन ! मैंने जो कुछ कहा उसमें मेरे दिल का दर्द था, इस कारण मैं तुम्हारी वन्दना करती हूं। तुम मेरे लिए तीन तीन सौतें लाये, उसकी ईर्ष्या के कारण मैं जल रही थी; इस कारण मैं तुम्हारी वन्दना करती हूं। तुम पर इतना क्रोध करके अब मैं थोड़ी हलकी हूं। मेरी आंखों का जहर अब निकल गया है।" द्रौपदी शान्त हुई।

"देवी पाञ्चाली ! तो अब चलें ! महाराज युधिष्ठिर हमारी राह देखते होंगे।" अर्जुन ने कहा।

और अर्जुन और द्रौपदी दोनों युधिष्ठिर के पास गये।

: ५ :

खाण्डव-दाह

सुभद्रा को लेकर अर्जुन इन्द्रप्रस्थ आया। उसके कुछ समय बाद श्रीकृष्ण सुभद्रा के विवाह का भात देने के लिए इन्द्रप्रस्थ आये।

एक बार अर्जुन और श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ के आस-पास का प्रदेश देखते हुए घूम रहे थे। इतने मे उन्हें रास्ते में एक ब्राह्मण दिखाई दिया। अर्जुन और श्रीकृष्ण को जाते देख, ब्राह्मण गिड़गिड़ाकर उनसे कहने लगा—"महाराज ! मैं ब्राह्मण हूं और कई दिनों से भूखा हूं। आप कृपा करके मेरी भूख मिटाइए।"

श्रीकृष्ण बोले—"जिसके चेहरे पर इतना तेज दीप्तिमान है, वह भला भूखा कैसे हो सकता है ?"

"महाराज !" ब्राह्मण हाथ जोड़कर बोला, "प्राणीमात्र की भूख भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। किसीको अन्न की भूख होती है तो किसी को विद्या की; किसी को धन की भूख होती है तो किसी को कीर्ति को; किसीको स्त्री की भूख होती है तो किसी को पुत्र की; इसी प्रकार किसी को त्याग की भूख होती है तो किसी को सत्ता की।"

"तुम्हें किस चीज की भूख है ?" अर्जुन ने पूछा ।

"मुझे सत्ता की भूख है। इस खाण्डव वन पर मैं अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता हूं।" ब्राह्मण बोला ।

"तुम तो इन्द्रप्रस्थ पर भी अपना आधिपत्य चाह सकते हो। चाहने का क्या। पर खाण्डव वन के साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध ?" अर्जुन ने पूछा ।

"महाराज ! आपने मुझे पहचाना नहीं। मैं अग्नि हूं। कुछ बरस पहले इस सारे प्रदेश को मैंने अपने अधिकार में कर लिया था और खाण्डव वन के नाग लोगों का संहार कर डाला था।" अग्निदेव बोला ।

"तो फिर आज यह किसके अधिकार में है ?" अर्जुन बोला ।

"मैंने नागों का संहार किया, उसके बाद कुछ समय तक तो वे दबे हुए-से रहे; लेकिन फिर तो देखते-ही-देखते सारे प्रदेश में अराजकता फैल गई और नाग लोगों के नायक तक्षक ने मेरी सत्ता को उखाड़ फेंका।" अग्नि ने कहा ।

"तो तक्षक बहुत बलवान है, क्यों ?" श्रीकृष्ण ने प्रश्न किया ।

"बलवान तो है ही। पर साथ ही उसे देवराज इन्द्र की भी बड़ी मदद है। इन्द्र अगर उसकी मदद पर न हो तो इसी घड़ी मैं उन सबको जलाकर भस्म करदूं।" अग्नि ने कहा ।

"तो अब तुम क्या करना चाहते हो ?" श्रीकृष्ण ने पूछा ।

"महाराज ! क्या करूं और क्या न करूं इसी उधेड़बुन में मैं वरुण के पास गया था। वरुण हमारे देवलोक के पुराने ऋषि हैं। आजतक जगत् में जब-जब प्रलय काल जैसे संहार हुए हैं तब-तब संहार में काम आनेवाले खास-खास शस्त्रास्त्र वरुण के यहां ही बने हैं। जब कभी संहार का कोई ईश्वरी-संकेत होता है तो वरुण उस संकेत के अनुसार बहुत सावधानी से शस्त्रास्त्र तैयार रखते हैं और समय आने पर अधिकारी पुरुष को उन्हें पहुंचाते हैं।" अग्नि ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा ।

"तुमने वरुण के पास जाकर क्या किया ?" श्रीकृष्ण ने पूछा ।

"मैं तो अपनी विपत्ति में उनसे सलाह मांगने गया था । उस समय वरुणदेव किसी भावी-संहार के लिए शस्त्रास्त्र तैयार कर रहे थे। मेरी बात सुनते ही वह बोले, 'यह रथ देखा ? इसमें ये दो तरकश ऐसे बनाये हैं जिनमें बाण कभी खत्म ही नहीं होंगे । ये सफेद घोड़े हैं, हनुमान की ध्वजा वाले इस रथ को ये घोड़े खींचेंगे । और यह धनुष ? देखो इसमें कैसे-कैसे रत्न जड़े हुए हैं । इस गाण्डीव की टंकार मात्र ही शत्रु के लिए काफी है । यह गदा और चक्र भी देख । इस समय संसार में थोड़े ही समय बाद एक महा-संहार होने वाला है, उसीके लिए ये दिव्य शस्त्रास्त्र मैं तैयार कर रहा हूँ ।" अग्निदेव बोलते-बोलते जरा अटक गये ।

"लेकिन तुम्हारी बात का उन्होंने क्या जवाब दिया ?" अर्जुन बोला ।

"मुझे उन्होंने यह बता दिया कि इन साधनों का उपयोग करने के लिए श्रीकृष्ण और अर्जुन पृथ्वी लोक में पैदा हुए हैं, इसलिए तुम उनसे मिलकर मदद मांगो तो ठीक होगा । अगर वे मदद करना स्वीकार कर लें तो मेरे ये साधन उनके लिए तैयार हैं ।" अग्नि ने अपनी बात समाप्त की ।

"तो जो तुम चाहते हो वही वरुणदेव का महासंहार है क्या ?" श्रीकृष्ण ने पूछा ।

"अजी नहीं । महासंहार तो कुछ समय बाद होनेवाला है । मुझे खुद उस महासंहार के बारे में कुछ भी मालूम नहीं है । लेकिन पुरातन ऋषि वरुण कहते थे कि इस जगत् में एक महासंहार के बीज उग चुके हैं—उसको अब बहुत समय नहीं है ।" अग्नि ने कहा ।

"सखा अर्जुन !" "श्रीकृष्ण ने पूछा, "बोलो, क्या इरादा है ?"

"लक्ष्मी अगर बिना मांगे आती हो तो उसके लिए इन्कार क्योंकर हो सकता है ? वरुण का दिया हुआ दिव्य रथ मिले, घोंड़े मिलें, गाण्डीव धनुष और जिसमें कभी बाणों की कमी न पड़े ऐसा तरकश

मिले, इसके अलावा गदा और चक्र भी मिलते हों, तो फिर क्या बात है ? अग्निदेव की मदद करके भला उन्हें हम क्यों न ले लें ? अग्नि को हम अपना मित्र बनायेंगे तो किसी-न-किसी दिन वह हमारे काम ही आयेंगे ।" अर्जुन ने जवाब दिया ।

"अच्छा तो, अग्निदेव, आप वरुण के पास से उन सब साधनों को ले आइये और फिर आप चाहें तो खाण्डव वन में आग लगा दें । आप जब आग लगायेंगे तब हम किसीको भागने नहीं देंगे । बतलाइए, कब आप यह काम शुरू करेंगे ?" श्रीकृष्ण ने अग्नि से कहा ।

"कल ही क्यों न शुरू करदें ? इस समय तक्षक कुरुक्षेत्र गया हुआ है, यह भी सुयोग की ही बात है । वरुण के पास से उन सब साधनों को लाने में क्या देर लगती है ? महाराज ! आपको अनेक नमस्कार !" यह कहकर अग्नि ने विदा ली, और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन इन्द्रप्रस्थ की ओर गये ।

× × × ×

अग्नि के खाण्डव वन में प्रवेश करते ही ऐसा मालूम होने लगा मानो चारों और प्रलय आगया । प्रलय के समय जिस प्रकार आकाश में मेघ छा जाते हैं और बिजली की कड़कड़ाहट से पृथ्वी फटने लगती है उसी प्रकार खाण्डव वन के विशाल वृक्ष बड़े ज़ोरों से आवाज़ करते हुए जलने लगे और उनके धुएँ से अनंत आकाश कांपने लगा । वन में नाग लोगों की बस्ती थी । नाग लोगों के नायक का नाम तक्षक था । वह किसी काम से वन से बाहर गया हुआ था । नागों के अनेक स्त्री-पुरुष, ढोर-डंगर, पशु-पक्षी, साज-सामान सब अग्निदेव की प्रचण्ड ज्वालाओं में भस्म होने लगे। पक्षी गर्मी को सहन न करने के कारण उड़ने लगे, लेकिन अध बीच में ही आग से पंखों के झुलस जाने पर आग में गिर पड़े और भस्म होगये । कितनी ही नाग स्त्रियाँ अपने दुधमुहे बच्चों को लेकर भागीं, लेकिन अग्नि ने उनको रास्ते में ही पकड़ लिया और उनके दूध पीते बच्चों को अपनी माँ की छातियों में ही भस्म कर दिया। नाग लोगों के ढोर-डंगर अपनी रक्षा के

लिए चिल्लाते हुए इधर-उधर भागने लगे; लेकिन अग्नि उनको भी छोड़ने वाला नहीं था। सारे खाण्डव वन में भय और त्रास का साम्राज्य छा गया और वहाँ के निवासियों के आर्त्तनाद से कान फटने लगे; लेकिन अग्निदेव तो हृदयहीन होकर अपना काम किये ही जारहे थे। तक्षक के परममित्र इन्द्र को जब नाग लोगों की इस विपत्ति की खबर हुई तो वह उनकी मदद को दौड़े; लेकिन क्या करते? अग्निदेव ने तो सारे प्रदेश को घेर लिया था और कोई छोटा सा प्राणी भी जिन्दा वहाँ से बाहर न निकले, इसके लिए अर्जुन तथा श्रीकृष्ण सीमा पर मौजूद थे। देवराज इन्द्र ने जलते हुए खाण्डव वन को बुझाने का कितना ही प्रयत्न किया और अन्त में सारे प्रदेश पर पानी की सहस्रों धारायें बरसाईं, लेकिन पानी की धाराओं से आग में और वृद्धि ही हुई। इन्द्र हताश हुए सारे खाण्डव वन को खड़े-खड़े देखते भर रहे।

अर्जुन और श्रीकृष्ण सारे प्रदेश में घूम-फिरकर इस बात की निगरानी रख रहे थे कि अग्नि की लपटों से कोई बचकर निकल न जाय। इन्द्र के सारे प्रयत्नों को निष्फल करने में अर्जुन का बड़ा हाथ था। वरुण के दिये हुए इन नये साधनों से, ये दोनों मित्र, जलकर खाक हो जाने वाले वन की सीमा की रक्षा कर रहे थे। इतने में किसी की जोर से आवाज आई—"हे श्रीकृष्ण! हे अर्जुन! मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो।"

आवाज सुनते ही अर्जुन चौंक पड़ा। पीछे मुड़कर देखा तो एक पुरुष बड़ी जोर से दौड़ता हुआ आ रहा था और आग की लपटें उसका पीछा कर रही थीं।

"हे श्रीकृष्ण! हे अर्जुन! मुझे बचाओ, नहीं तो तुम्हें बड़ा पाप लगेगा।"

अर्जुन ने अग्नि की लपटों को रोककर उस पुरुष से पूछा, "तुम कौन हो और क्यों भाग रहे हो?"

आग की लपट से बचकर आगन्तुक जरा स्वस्थ हुआ और बोला, "महाराज! मैं एक दानव हूं। मेरा नाम मय है। बहुत वर्षों से इस

खाण्डव वन में रहता हूं। अपने अध्ययन-गृह में स्थापत्य और शिल्प-शास्त्रों का अध्ययन कर रहा था, इतने में इन लपटों ने मुझे पकड़ लिया। इसलिए तुम्हारे पास भागा आया हूँ। मुझे इनसे बचाओ!"

"आज तो अग्निदेव सारे वन में आग लगा चुके हैं, इसलिए उसमें से कोई जिन्दा बचकर जा नहीं सकता।"

"श्रीकृष्ण! पाण्डव के पुत्र अर्जुन! तक्षक और अग्निदेव का आपस में वैर है। इसके लिए तक्षक की सारी प्रजा को जलाकर भस्म कर देना क्या अग्निदेव का न्याय है? राजा लोग राज्य-लोभ या सत्ता-लोभ के वश होकर सारे गांव-के-गांव उजाड़ डालें तो भी आप सब उसे धर्म के नाम पर सह लेंगे?" मय दानव ने कहना शुरू किया।

"अग्निदेव और तक्षक इन दोनों में से कौन सच्चा है और कौन झूठा, यह देखना हमारा काम नहीं है। हमने अग्निदेव की मदद करना मंजूर किया है, इसलिए यहां खड़े हैं और किसीको बाहर नहीं जाने देते।" अर्जुन ने जवाब दिया।

मयदानव ने जरा मुसकराकर कहा—"कोई साधारण क्षत्रिय ऐसा जवाब देता तो मैं समझ सकता था। लेकिन अर्जुन! तुम तो एक अधिकारी पुरुष हो। मैंने जो-कुछ सीखा है उसपर से मैं कह सकता हूँ कि जिस रथ में तुम बैठे हो वह और तुम्हारे हाथ में जो धनुष और तरकश हैं ये सब किसी ईश्वरीय संकेत के कारण ही तुम्हारे पास हैं। इस कारण तुम्हारे जैसा पुरुष मुझे ऐसा जवाब नहीं दे सकता।"

"तो तुम्हें जाने दें, यही तुम चाहते हो न?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"मेरी रक्षा करो। पर वह मुझ जैसे रंक पर रहम खाकर नहीं। आप जैसे क्षत्रियों को मरना आता है तो मुझ जैसे ब्राह्मणों को भी मरना आता है। अतः मेरी रक्षा करना आपको धर्म मालूम पड़ता हो तो ही मेरी रक्षा कीजिये। शास्त्र में ब्राह्मणों को अ-वध्य कहा गया है, यह आप क्या नहीं जानते? ब्राह्मण अ-वध्य सिर्फ इसीलिए नहीं है कि उसका शरीर शूद्र के शरीर से कुछ मोटा होता है, बल्कि इसलिए कि

ब्राह्मण समस्त प्रजा की संस्कृति का रक्षक है। राज्य-लोभ के चाहे जैसे घोर युद्ध में भी ब्राह्मणों का बलिदान नहीं होने देना चाहिए। आज आप लोग खाण्डव वन को जलाकर हम-जैसे ब्राह्मणों की संस्कृति का नाश करने पर तुले हुए हैं, इसीका मैं विरोध कर रहा हूं और इसी कारण मैं अपनी रक्षा चाहता हूँ।" मय ने कहा।

"तुम तो दानव हो न?"

"जन्म से दानव हूँ, लेकिन स्थापत्य और शिल्प-शास्त्र का ज्ञाता होने के कारण मैं ब्राह्मण हूँ। हम दानव आप लोगों को भले ही जंगली और उजड्ड दिखाई देते हों, फिर भी इस प्रकार की विद्या में तो आप आर्यों को हमसे अभी भी बहुत-कुछ सीखना बाकी है।" मय बोला।

"मय! जाओ, तुम्हें मैं अभयदान देता हूं। तुम अपने कुटुम्ब-कबीले को लेकर अच्छी तरह यहां से निकल जाओ। और कोई इच्छा है?" अर्जुन ने कहा।

"खाण्डव-वन को आग लगने के पहले अगर पता होता तो बहुत-कुछ माँगता। अग्निदेव ने इस प्रदेश के स्त्री-बच्चों को जलाकर बड़ा भारी अनर्थ किया है। पर अब तो उसका कोई उपाय नहीं रहा। अर्जुन! आज तक्षक की अनुपस्थिति में तुम लोगों ने इन तमाम नाग लोगों का जो संहार किया, इससे तक्षक तुम्हारा मित्र हुआ या शत्रु?" मय ने पूछा।

"आखिर तुम और कहना क्या चाहते हो?" अर्जुन ने पूछा।

"मेरा मतलब यह है कि इससे तो उलटा तक्षक तुम्हारा शत्रु हो गया और मौका आने पर तुम्हें या तुम्हारी प्रजा को वह जरूर डसेगा। इसी खाण्डव-वन को एक बार अग्निदेव ने अपने अधिकार में कर लिया था, पर वहां फिर से नाग लोग आगये और अग्नि को वहां अपना पांव रखना भारी पड़ गया। आज तुमने नाग लोगों का सर्वनाश किया है तो कल नाग लोग तुम्हें सतायेंगे। इस प्रकार यह समस्या तो ज्यों-की-त्यों बनी ही रहेगी न? यह ठीक है कि मुझे इन सब बातों से कोई मतलब

नहीं है; पर मैं तो अपने मन में उठी हुई बात सिर्फ कह भर रहा हूं।" मय बोला।

"आज इन सब बातों पर विचार करने का समय नहीं है। तुम तो अपनी जान लेकर भागो।" अर्जुन ने कहा।

"धन्यवाद, महाराज! आपने मेरी बातों को सुनकर मेरी रक्षा की, इसलिए एक प्रार्थना करता हूँ। मेरी स्थापत्यकला और शिल्पकला की जब आपको जरूरत हो तब मैं आपकी सेवा के लिए तैयार हूँ। खाली शिष्टाचार के लिए मैं यह नहीं कह रहा हूँ, यह ध्यान रक्खेंगे।" मय ने कहा।

"अच्छी बात है; जाओ।"

"अर्जुन! भविष्य में तुम शायद राजसूय यज्ञ करो, तब यह दानव तुम्हारे काम आ सकता है। इसलिए उस वक्त यह बात याद रखना।"

"ठीक है।" श्रीकृष्ण ने कहा।

मयदानव दोनों की आज्ञा लेकर चला गया और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन अपने-अपने काम में लग गये।

: ६ :

सारथी बृहन्नला

वनवास के तेरहवें वर्ष पाण्डवों को अज्ञातवास में रहना था। द्रौपदी समेत पांचों पाण्डव विराट राजा के नगर में गुप्तवेश में रहे। उर्वशी के शाप से अर्जुन एक साल के लिए नपुंसक बन गया और बृहन्नला नाम रखकर राजकुमारी उत्तरा को संगीत तथा नृत्य सिखाने लगा। द्रौपदी रानी सुरेष्णा की दासी बनी और उसने अपना नाम सैरन्ध्री रक्खा।

अज्ञातवास के दिनों में पाण्डवों को खोजकर प्रकट कर देने के लिए कौरव जी-तोड़ कोशिश कर रहे थे। इसके लिए अपने कितने ही गुप्त जासूस भी उन्होंने देश-विदेशों में भेजे। जिमूत नाम का अद्वितीय पहलवान विराटनगर में कुश्ती में हारकर मारा गया। यह समाचार पाकर

शकुनि को कुछ शंका तो हो ही गई थी। कीचक और उसके सौ भाइयों की बात भी उड़ती-उड़ाती कौरवों तक पहुँच ही गई। अतः दुर्योधन ने एक बड़ी फौज के साथ विराटनगर पर चढ़ाई करदी।

× × ×

एक दिन रानी सुरेष्णा अपने महल में बैठी हुई थी और सैरन्ध्री उसकी चोटी गूंथ रही थी। एकाएक दरवाजे पर किसी की आवाज आई—"सुरेष्णा माई! हमें बचाओ। अरे, जल्द बचाओ! हाय! मार डाला रे!"

आवाज सुनते ही सुरेष्णा उठ खड़ी हुई और पूछा—"कौन? दरवाजे पर यह कौन चिल्ला रहा है?"

"माताजी, हम हैं, आपकी गाय चराने वाले। वह देखो गांव के बाहर बड़ी भारी फौज आई हुई है और हमारे ढोर-डंगरों को भगाकर लिये जा रही है।" एक ग्वाले ने कहा।

"किसकी फौज है?"

"हमने जब पूछा तो उन्होंने कहा, यह कौरवों की सेना है। माताजी! देखो न, हमारे सिर और पीठ पर लाठियां मार-मार कर हमें भगा दिया और सारी गायें ले गये। माताजी, हम और किसके पास जावें! आप ही का तो सहारा है। हमें बचाओ।"

"भला मैं अकेली क्या कर सकती हूं? महाराज अपनी सारी सेना लेकर दक्षिण दिशा की ओर गये हुए हैं और अभी तक वापस नहीं लौटे हैं। सेनापति भी उन्हीं के साथ हैं। यहां तो मैं और कुमार उत्तर यही दो हैं।" सुरेष्णा जरा दीन होकर बोली।

"तो फिर उत्तर भाई लड़ने जायंगे।" सैरन्ध्री ने कहा, "क्यों उत्तर भाई?"

कुमार उत्तर एकदम छलांग मारकर उठा और बोला—"हां-हां, मैं लड़ने जाऊंगा। कहां है कौरव सेना? देखो, अभी सबको मार गिराता हूँ।"

"शाबाश ! कैसे बहादुर हैं उत्तर भाई ! ठीक तो है। पिताजी यहां नहीं हैं, तब आज तो तुमको ही लड़ने जाना और सबको हराकर वापस आना चाहिए।" सैरन्ध्री बोली।

"सैरन्ध्री ! इसमें भी कुछ कहना है ! इस तलवार से दुर्योधन की गर्दन उड़ा दूंगा, और उसके भाइयों के लिए तो मेरा एक तीर ही काफी है। मां ! बस, अब जल्दी से मेरा रथ तैयार कराओ।"

"सैरन्ध्री ! इस अबोध बालक को क्यों भड़का रही है ? बेटा, तू अभी अकेला लड़ने कैसे जा सकता है ? जब बड़ा हो तब जाना ? अभी तो तू बच्चा है।" सुरेष्णा ने कहा।

"क्या अभी मैं बच्चा ही हूँ ? जरा मेरी तरफ देख तो ! नहीं, मुझे तो आज जाना ही है। नहीं जाने देगी तो यहीं मैं अपनी जान दे दूंगा। मैं विराटनगर का राजकुमार हूँ। शत्रु हमारी गायें ले जायं और मैं देखता रहूँ ?" उत्तर बेकरार होकर बोला।

"तो मां ! कुमार को जाने दो न ?" सैरन्ध्री बोली।

"तू भी अच्छी मिली। बच्चे की मां होती तो तू जानती कि कैसे भेजा जाता है। अकेले अबोध कुमार को इस कौरव सेना रूपी काल के मुंह में भला कैसे भेज दूं ?" रानी बोली।

"अकेले भला क्यों जायंगे ? साथ में इस बृहन्नला को भेज दीजिये।" सैरन्ध्री बोली।

"बृहन्नला को ? यह क्या वहां चोटी खोलकर नाचेगी ?" सुरेष्णा ने कटाक्ष किया।

"रानीजी !" सैरन्ध्री ने कहा, "इस बृहन्नला ने तो कई बार अर्जुन तक का रथ हांका है।"

"अर्जुन का रथ हांका है ? तब तो बृहन्नला, तू चल मेरे साथ और मेरा रथ हांक।" उत्तर बृहन्नला का हाथ पकड़कर उसे खींचने लगा।

"बृहन्नला ! क्या सचमुच तूने अर्जुन का रथ हांका है ? मेरी समझ में तो यह बात आती नहीं। और अगर हांका हो तो भी उसका

यह मतलब तो नहीं हुआ कि उत्तर को लड़ाई में भेज दिया जाय।" रानी बोली।

"मां! मैं तो जरूर जाऊंगा। तुम भले ही मना करो। मैं रुकने वाला नहीं हूं। मैं जाऊंगा और फिर जाऊंगा।"

"रानीजी! कुमार जब जाने का आग्रह कर रहे हैं तो उन्हें भेज दो न?" सैरन्ध्री ने कहा।

"और जब महाराज आकर पूछेंगे तब उनको मैं क्या मुंह दिखाऊंगी?" रानी क्रुद्ध होकर बोली।

"कुमार का बाल भी बांका नहीं होगा, इसका मैं विश्वास दिलाती हूँ। बृहन्नला जब रथ पर बैठी हो तो रथ को कोई आंच नहीं आ सकती।" सैरन्ध्री ने कहा।

"बृहन्नला की खूब कही! अरे, वहां लड़कियों को नाचना-गाना तो सिखाना नहीं है; वहां तो मर्दों के खेल होते हैं।" रानी ने कहा।

"लेकिन मां!" उत्तर बोला, "मैं गये बगैर मानूंगा नहीं। मैं मर्द हूँ। इस प्रकार कायर बनकर घर में नहीं बैठ सकता।"

"माजी, मेरी समझ में तो आप कुमार को जाने दें।" सैरन्ध्री फिर बोली।

"तू जबसे 'जाने दो', 'जाने दो' ही कह रही है। पर बृहन्नला भी तो यहाँ पास ही खड़ी है, उसके मुंह से तो बोल भी नहीं निकल रहा है।" रानी ने गुस्से से कहा।

"मांजी, मैं क्या कहूँ? सैरन्ध्री कह ही रही है। अपने मुंह से कुछ कहना मुझे शोभा नहीं देता। फिर भी मैं कहती हूँ कि मुझे भेजेंगी तो कुमार को ऐसे-के-ऐसे ही आपकी गोदी में सौंप दूंगी, यह विश्वास रक्खो।" बृहन्नला ने जताया।

"अब मां! जल्दी करो। बृहन्नला! तैयार हो जा। अश्वशाला में से घोड़े जोड़कर रथ को यहां ले आ। बेचारे ये ग्वाले राह देख रहे हैं।" उत्तर बोला।

"रानीजी की आज्ञा हो तब न!"

"बृहन्नला ! सैरन्ध्री ! तुम्हारे वचनों पर विश्वास रखकर मैं अपने इस कोमल कुमार को तुम्हें सौंपती हूँ। बृहन्नला ! उत्तर अभी बालक है, इसलिए मन तो नहीं मानता; लेकिन तूने अर्जुन का रथ हांका है, इसलिए मुझे कुछ धीरज है। जा, तू रथ तैयार कर।"

रानी के कहने पर बृहन्नला रथ तैयार करने गया। इधर सुरेष्णा कुमार उत्तर को तैयार करने लगी।

× × ×

विराटनगर के दरवाजे में से घुंघरुओं की मधुर आवाज करता हुआ कुमार उत्तर का रथ निकला। रथ में चार सफेद घोड़े जुड़े हुए थे और आगे घोड़ों की लगाम हाथ में लिये बृहन्नला बैठी हुई थी। अन्दर विराट राजा का लाड़ला कुमार बैठा हुआ मन-ही-मन उड़ा जा रहा था कि अपने कमरे में रक्खे खिलौनों को काठ की तलवार से जिस आसानी से मार देता हूँ उसी तरह कौरवों को हराकर तुरंत वापस आजाऊंगा। कौरवों को देखने के लिए वह बार-बार उसकता और अपनी गर्दन इधर-उधर घुमाता था।

दरवाजे से बाहर निकलते ही बृहन्नला ने घोड़ों की लगाम को कस कर पकड़ा और घोड़ों को छोड़ दिया। रथ के पहिये धूल उड़ाने लगे और थोड़ी देर में यह निश्चय करना मुश्किल हो गया कि घोड़ों के खुर जमीन को लगते भी हैं या नहीं। कुमार उत्तर को इस रथ-यात्रा मे बड़ा मजा आ रहा था। लेकिन सामने कुछ देखकर वह एकाएक चौंका और कहने लगा—"बृहन्नला ! यह रथ इधर क्यों मोड़ा ? हमें तो कौरवों की सेना को मारना है, और यह तो समुद्र की तरफ जाने का रास्ता है।

"कुमार ! धीरज रक्खो, रथ कौरवों की सेना की तरफ ही जा रहा है।" बृहन्नला ने शांति से जवाब दिया।

"पर सामने तो समुद्र दिखाई दे रहा है ! समुद्र की लहरें कैसी

उछल रही हैं। उसका पानी सूर्य के तेज से कैसा चमक रहा है ! तू गलत रास्ते ले आई। चल, रथ को दूसरी तरफ मोड़।" उत्तर बोला।

"कुमार ! तुम जो देख रहे हो वह समुद्र नहीं हैं; यह कौरव-सेना है। कौरव-सेना के भाले और तलवारों की चमक से तुम्हें समुद्र का आभास हो रहा है।" बृहन्नला ने कहा।

"बृहन्नला ! तू क्या कह रही है ? क्या यही कौरव-सेना है, जिसके सामने मैं आंख उठाकर देख भी नहीं सकता ? ये जो चमक रहे हैं, वे क्या सैनिकों के हथियार हैं ?" उत्तर ने पूछा,और पूछते-पूछते उसका सारा शरीर पसीने से तर होगया। उसके हाथ ढीले पड़ गये, मुंह सूख गया, और शरीर के अंग-प्रत्यंग कांप उठे। अफीम खाने वाले का नशा उतर जाने पर उसका शरीर जैसे टूटने लगता है उसी तरह कुमार का जोश उतर गया और सारा शरीर कांपने लगा।

इधर बृहन्नला का सारा ध्यान तो कौरव-सेना पर ही था। सुरेष्णा के महलों में ग्वालों की बात सुनी तभीसे उसके हाथ शस्त्र पकड़ने को अकुला रहे थे। आज तेरह वर्षों से अपने अन्दर के जिस जोश को बड़ी मेहनत से दबा रक्खा था वह आज मचल उठा। वनवास की सारी मुसीबतें उसकी आंखों के आगे नाचने लगीं। प्रिय पत्नी द्रौपदी पर आये कष्ट मानो उसे उलहना देने लगे। जिस महान् कार्य के लिए अर्जुन ने स्वयं शंकर भगवान् के पास से पाशुपतास्त्र प्राप्त किया, जिस महान् कार्य के लिए यमराज और वरुण जैसे लोकपालों के पास से दिव्य-अस्त्र प्राप्त किये, जिस महान् कार्य के लिए स्वयं इन्द्र से वरदान प्राप्त किया, वह महान् कार्य मानो आज उसका आह्वान कर रहा है, ऐसा मालूम होने लगा। अर्जुन कौरव-सेना की ओर देख रहा था। उसमें भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि होंगे, यह भी कल्पना आई और इस सेना को युद्ध में मार भगाने के मीठे स्वप्न उसके मन में आने लगे। इधर मन में तरह-तरह के विचार आ रहे थे उधर रथ भी आगे बढ़ता चला जा रहा था।

इतने में बृहन्नला ने पीछे नजर की तो कुमार उत्तर रथ में नहीं था।

"अरे ! कुमार कहां गये ?" रथ के बाहर गर्दन उठाकर देखा तो कुमार वापस भागा जा रहा था। उत्तर कौरव-सेना को देखकर डर गया था, अतः पीछे से चुपचाप रथ से नीचे उतरकर सीधा विराटनगर की ओर भागा।

"अब ? क्या रथ को पीछे ले जाऊं ? शत्रु को पीठ दिखाऊं ?" अर्जुन ने सोचा और रथ को वहीं खड़ा करके उत्तर को पकड़ने के लिए दौड़ा। भागते में उसकी चोटी खुल गई; पर जल्दी ही उसने कुमार को पकड़ लिया। उत्तर छूटने के लिए बहुत छटपटाया; लेकिन अर्जुन कहां माननेवाला था ? उसने तो कुमार को लाकर रथ में बिठाया और रथ को कौरव-सेना की ओर ले जाने के बदले श्मशान की ओर मोड़ लिया। श्मशान में कीकर का एक पेड़ था, वहां जाकर उसने रथ को खड़ा किया।

"कुमार !" बृहन्नला बोली, "देखो अब तुम जा नहीं सकते। तुम लड़ न सको तो मत लड़ो। तुम रथ हांको, और मैं तुम्हारे बदले लड़ लूंगी।"

"तू अकेली कैसे लड़ेगी, बृहन्नला ?"

"इस समय कुछ मत बोलो। रथ से नीचे उतरो और इस पेड़ के ऊपर जो बड़ी-सी गठरी टंगी है उसे नीचे ले आओ।" बृहन्नला बोली।

"पर बृहन्नला ! वहां तो कोई मुर्दा टंगा हुआ दीखता है। कहीं कोई भूत न हो।" उत्तर बोला।

"भूत-वूत कोई नहीं है। तुम लगाम पकड़कर खड़े रहो। मैं रथ पर चढ़कर उतार लेती हूं।" इतना कहकर बृहन्नला ने गठरी उतारी और उसमें से गांडीव धनुष तथा दो खाली न होनेवाले तूणीर निकाल लिये। इसके बाद गठरी जैसी-की-तैसी बांधकर वहीं पर टांग दी और मुर्दे को भी वहीं लटका दिया।

गठरी को देखते ही कुमार तो हक्का-बक्का-सा होगया था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि बात क्या है ? "बृहन्नला !" उत्तर ने

कहा, "एक बात पूछना चाहता हूं। यह धनुष और तूणीर किसके हैं? और तू खुद कौन है?"

"कुमार! जब प्रसंग आगया है, तो बता देता हूं। पर याद रखना अगर तुमने किसी से यह बात कही तो अपनी जान से हाथ धोओगे। मैं अर्जुन हूं।" बृहन्नला ने खुलासा किया।

"अर्जुन! पांडवों का अर्जुन? तब तो यह गांडीव ही होगा।" कुमार के आनन्द का पार न रहा।

"कुमार! राजा के पास जो कंक रहता है वह युधिष्ठिर हैं, पाकशाला में जो वल्लभ है वह भीम है, नकुल-सहदेव अश्वपाल और गो-पालक हैं, और यह सैरन्ध्री ही द्रौपदी है। समझ गये! अब जरा भी झिझके बगैर रथ को बेधड़क हांको, और देखो कि अर्जुन कौरवों को कैसे मार भगाता है। जब हम विराटनगर आये थे, तब हमने अपने सब शस्त्रास्त्र बांधकर इस पेड़ के ऊपर रख दिये थे, और किसी को शक न हो इस-लिए उसके पास मुर्दे को टांग दिया था। लेकिन जबतक मैं कह न दूं तबतक यह भेद किसी से न कहना, समझे!"

"अर्जुन! मैं किसी से नहीं कहूंगा। मैं अपनी जान खतरे में डालकर भी इस बात को गुप्त रक्खूंगा।" उत्तर ने कहा, और घोड़े की लगाम अपने हाथ में ले ली।

थोड़ी देर में घुंघरुओं का नाद करता हुआ रथ कौरव-सेना के सम्मुख आकर खड़ा हुआ और अर्जुन ने जोर से गांडीव का टंकार किया। उस एक ही टंकार ने कौरवों के दिल दहला दिये। 'रथ में बैठकर लड़ने के लिए आनेवाले ये कौन होंगे?' 'यह चोटीवाला कौन होगा?' 'पांडवों का तेरहवां वर्ष खत्म होगया क्या?' 'न हुआ हो तो यह तो अर्जुन-जैसा ही दिखाई देता है; तब तो फिर उसे और बारह वर्ष वन में भटकना होगा।' इस प्रकार कितने ही तर्क-वितर्क कुरु-सेना में चल रहे थे, इतने में अर्जुन ने फिर गाण्डीव का टंकार किया और भीष्म के चरणों में प्रणाम करते हुए दो तीर वहां आकर गिरे। भीष्म

समझ गये और उन्होंने दो तीर अर्जुन के सिर पर डालकर आशीर्वाद दिया। द्रोण की भी अर्जुन ने इसी प्रकार वीर-वंदना की, और द्रोण ने भी उसे आशीर्वाद दिया।

इसके बाद युद्ध शुरू हुआ। भीष्म ने थोड़ी देर तो अर्जुन से टक्कर ली; लेकिन बाद में उन्हें खिसकना पड़ा। द्रोण तो पहले से ही दूर खड़े थे। कर्ण बहुत शेखी बघारता हुआ अर्जुन के सामने आया, लेकिन अर्जुन के गांडीव के सामने टिक नहीं सका। दुर्योधन ने युद्ध में बहुत बहादुरी दिखाई और अर्जुन को हराने का प्रयत्न किया, पर उसे भी भागना पड़ा। अन्त में अर्जुन ने सम्मोहनास्त्र छोड़कर सारी कौरव-सेना को मोहनिद्रा में सुला दिया।

"कुमार !" अर्जुन ने पुकारा।

"क्यों बृह........नहीं, अर्जुन ! क्या आज्ञा है ?"

"युद्ध देखा न !"

"देखा। आंखें खोलकर देख लिया। मुझे मालूम होता कि युद्ध ऐसा होता है तब तो मैं महलों में से निकलता ही नहीं। मैं तो समझता था कि जल्दी से इधर-उधर तलवार के दो हाथ मारकर दो-चार को खत्म कर देना ही लड़ाई है। पर कौरवों से युद्ध करना तो मौत के मुंह में पैर रखना है, यह मैं आज ही समझा। अर्जुन ! तुम्हारा जितना उपकार मानूं उतना ही कम है। आज तो तुमने मुझे मौत के मुंह से बचाया है।" कुमार गद्‌गद् हो गया।

"उत्तर ! जब हम लड़ाई में आ रहे थे तब तुम्हारी बहन ने तुम्हें टीका काढ़ते वक्त अपनी गुड़ियों के लिए सुन्दर-सुन्दर पोशाकें लाने को कहा था। इस समय सारी सेना सोई हुई है। जाओ, इनमे से जिसके कपड़े तुम्हें अच्छे लगें उन्हें उतार लो। सिर्फ भीष्म और द्रोण के कपड़ों को मत छूना।" अर्जुन ने कहा।

कुमार ने रथ से उतरकर कुछ कपड़े उतारे और रथ में रख लिये।

इसके बाद सम्मोहन अस्त्र को वापस खींचकर अर्जुन तथा उत्तर गायों को लेकर विराट की ओर लौट गये।

अर्जुन के चले जाने के बहुत देर बाद जब सेना की मूर्च्छा दूर हुई, तब सब मानो स्वप्न में से उठे हों इस तरह एक-दूसरे की ओर देखते, दूर आकाश में दृष्टि डालते, अपने आस-पास कौन सोया हुआ है यह पता लगाते, शरीर में किस जगह दर्द हो रहा है यह निश्चय करते, उठते-बैठते, कवच और बख्तर की धूल झाड़ते तथा शर्माते हुए कौरव दुर्योधन की अधीनता में वापस हस्तिनापुर की ओर लौटने लगे।

कुरुराज दुर्योधन ने विराटनगर की ओर एक शून्य दृष्टि डाली और अपनी सेना को चलने की आज्ञा दी।

: ७ :

युद्ध की तैयारी

पाण्डवों के प्रकट हो जाने के बाद हस्तिनापुर के राज्य में अपना हिस्सा प्राप्त करने के प्रयत्न में अनेक दूत इधर-से-उधर गये - आये और संधि की बातचीत हुई, लेकिन इस सबका कोई परिणाम नहीं निकला। अन्त में पाण्डवों की ओर से समझौते की शर्तें लेकर अंतिम बार श्रीकृष्ण हस्तिनापुर जाने को तैयार हुए।

पांचों पाण्डव, द्रौपदी और श्रीकृष्ण एकान्त में बैठे बातें कर रहे थे। श्रीकृष्ण बोले—"अर्जुन! अब तुम बताओ। महाराज युधिष्ठिर और भीमसेन के विचारों को तो मैंने सुन लिया। पाञ्चाली इस सारे प्रश्न पर किस प्रकार विचार करती है, यह भी मैंने जान लिया। अब मैं तुम्हारे विचार जानना चाहता हूं।"

"महाराज श्रीकृष्ण!" अर्जुन ने कहा, "मेरे या किसी और के विचार जाने बिना भी आप जो कुछ करेंगे उसमें हमारा कल्याण ही होगा, इसमें मुझे जरा भी शंका नहीं है।"

"फिर भी", श्रीकृष्ण बोले, "तुम अपने विचार तो कहो। तुम लोगों की ओर से संधि-चर्चा करने जाऊं और तुम लोगों के विचारों को बिना समझे-बूझे ही कुछ-का-कुछ करने लगूं तो मेरी संधि-चर्चा को बट्टा लगेगा और मेरे प्रति तुम्हारी जो श्रद्धा है उसमें भी बट्टा लगेगा।"

"श्रीकृष्ण! महाराज युधिष्ठिर जो कहते हैं और जिस तरीके से कहते हैं, वह मुझे तो बिलकुल नहीं रुचता। जिस प्रकार कौरव धृतराष्ट्र-पुत्र हैं, उसी प्रकार हम लोग भी महाराज पाण्डु के पुत्र हैं, हस्तिनापुर के सिंहासन पर जितना अधिकार उनका है, उतना ही बल्कि उससे ज्यादा हमारा अधिकार है। इस अधिकार को अधिकार मानकर काम करने के बजाय महाराज युधिष्ठिर आजतक धृतराष्ट्र से अनुनय-विनय ही करते रहे, जिससे आज तो सबकी यही धारणा बन गई है कि हमें ऐसा हक ही नहीं है, और धृतराष्ट्र तो ऐसा मानने भी लगे हैं।"

"तब मुझे वहां जाकर खास बात क्या करनी चाहिए?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"सबसे खास बात तो यही है कि हमें जो-कुछ लेना है वह धृतराष्ट्र चाचाजी की दया या उदारता से नहीं बल्कि महाराज पाण्डु के पुत्र होने की हैसियत से अधिकारपूर्वक लेना है। यह बात उन्हें साफ-साफ समझा देनी चाहिए।" अर्जुन ने जोर देकर कहा।

"लेकिन", श्रीकृष्ण बोले, "क्या दुर्योधन इस बात को स्वीकार करेगा? वर्षों से वह सत्ताधीश है, यह भूल न जाना चाहिए।"

"आपकी बात ठीक है। सत्ता बुरी चीज है। राजा यह भूल जाता है कि राजा की हैसियत से उसकी जो जिम्मेदारियां हैं उनको पूरा करने के लिए ही उसे अधिकार दिया जाता है, और आगे जाकर खुद सत्ता ही महत्त्व की चीज बन जाती है। सभी राजतन्त्रों में ऐसा ही होता है। बेन जैसे राजा को शायद इसीलिए पद-भ्रष्ट होना पड़ा। दुर्योधन को भी

अपनी सत्ता छोड़नी ही पड़ेगी, फिर वह चाहे समझ-बूझकर ऐसा करे या लड़-भिड़कर करे ।"

"लेकिन युद्ध के सब परिणामों को तुमने भलीभांति सोच लिया है ?" श्रीकृष्ण बोले ।

"युद्ध के परिणाम महाराज युधिष्ठिर कहते हैं वैसे ही अनिष्ट होंगे, इसमे मुझे जरा भी शंका नहीं है । युद्ध होने पर करोड़ों क्षत्रिय रणभूमि में सोवेंगे, कितने ही कुलों का युद्ध में समूल नाश होजायगा; कितनी ही स्त्रियां विधवा हो जायंगी; कितने ही क्षत्रिय बालक निराधार हो जायंगे; सारी प्रजा में अव्यवस्था फैल जायगी; चोर-डाकुओं का त्रास बढ़ जायगा; व्यापार की अपार हानि होगी; और लोगों के मनों में लड़ाई का नशा ऐसा छा जायगा कि लड़ाई खत्म होजाने के बाद भी कुछ समय तक समाज में वही रंग बना रहेगा । इन सब परिणामों को मैं जानता हूं, लेकिन यह अनिवार्य है । युद्ध होने पर कुछ समय तक तो मनुष्य अपनी मानसिक स्थिरता को खो देंगे, और उसके स्थिर होने तक समाज में अनेक बार उथल-पुथल होगी; परन्तु ईश्वर के इस जगत् में ऐसी उलटा-पलटी और स्थिरता-अस्थिरता होती ही रहती है, ऐसा भीष्म पितामह से मैंने समझा है । इसलिए अपने परम्परागत अधिकार के लिए लड़ना भी पड़े तो मुझे उसमें कोई हानि नहीं मालूम पड़ती ।" अर्जुन ने जवाब दिया ।

"तो फिर, जैसा भीमसेन ने कहा है, सीधे लड़ाई की ही बात रक्खूं ?" श्रीकृष्ण ने पूछा ।

"नहीं ।" अर्जुन ने टोका, "भीमसेन जो कहता है वह ठीक नहीं है। श्रीकृष्ण ! भीष्म पितामह ने मुझे जो-कुछ सिखलाया है उसपर से तो ऐसा लगता है कि दुर्योधन, युधिष्ठिर या श्रीकृष्ण हस्तिनापुर की प्रजा के भविष्य का निश्चय करनेवाले कौन होते हैं ? स्वार्थी लोग अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर सारी प्रजा को लड़ाई में झोंकें और लड़ाई में मरने को स्वर्ग का द्वार बतायें । यह तो शैतान का ही काम हो सकता है । राजा या साम्राज्य का यह प्रश्न ऐसा खोखला है कि जन-समाज के

जागृत होते ही बड़े-बड़े साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जावेंगे। ऐसा एक समय जरूर आने वाला है। इसलिए मैं चाहता हूं कि हमारा यह आपसी झगड़ा निर्दोष प्रजा का खून बहाये बगैर ही मिट जाय तो अच्छा हो। भीमसेन तो किसी भी तरह लड़ाई ही चाहता है। मैं सम्मानपूर्वक अपना हक मांगता हूं, लेकिन उस हक के लिए लड़ना पड़े तो उसके लिए भी तैयार हूं।"

"तुम्हारी बात भी ठीक है। अच्छा तो भीष्म पितामह या द्रोणाचार्य से क्या कहा जाय?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"पहले तो धृतराष्ट्र चाचा से मिलिये! मेरी ओर से उनसे कहिये कि आप तो कौरव-पाण्डवों दोनों के ही हितों के संरक्षक हैं। पाण्डु महाराज हमें आपके भरोसे छोड़ गये हैं। संरक्षक में खुदगर्जी नहीं होनी चाहिए। जो आदमी कुटुम्ब के अन्दर भी अपने ही स्वार्थ को प्रधानता नहीं देता उसीका बड़प्पन यशस्वी होता है। आपने हमारे और कौरवों के बीच भेद किया है, यह आपके बड़प्पन को शोभा नहीं देता। युधिष्ठिर पुराने विचारों को मानकर आपको अब भी अपना बडा-बूढा मानते हैं; लेकिन मेरी समझ मे तो आप जैसे स्वार्थी बुजुर्गों को पथ-भ्रष्ट कर देना चाहिए। भीष्म और द्रोण से मेरा प्रणाम कहना। इन दोनों के चरणों में बैठकर मैंने जो-कुछ सीखा है उसके लिए मैं उनका सदा ऋणी हूं। लेकिन श्रीकृष्ण दोनों को जता देना कि जीवन-मरण के अवसर पर जो आदमी केवल अपने विचार प्रकट करके ही बैठा रहे और उन विचारों पर अमल न करे, वह हतवीर्य है और इसलिए दया का पात्र है। यह मैं जानता हूं कि आप दोनों का हमारी ओर झुकाव है; आपके हृदय हमारा भला देखकर प्रसन्न होते हैं, यह भी मैं अच्छी तरह समझता हूं; लेकिन जहां घोर अन्याय और स्पष्ट अधर्म हो रहा हो, वहां मनुष्य की क्षात्रवृति अनायास ही जागृत न हो तो फिर वह क्षत्रिय कैसा? दुर्योधन का अन्याय देखते हुए भी आप उसका साथ दे रहे हैं, इसीसे प्रकट है कि हो न हो दिलसे आप उसके ही साथ

हैं। और आपके इसी पक्षपात के बूते पर सारी कौरव-सेना नाच रही है।" अर्जुन ने अपने जी का गुबार निकाला।

"किसी और से भी कुछ कहना है?" श्रीकृष्ण ने और पूछा।

"यों तो बहुतों का ध्यान आता है। दुर्योधन है, कर्ण है, दुःशासन है, विदुर चाचा भी हैं; लेकिन उनसे किसी से कुछ नहीं कहना है। मैं समझता हूं कि आज ऐसे संदेशों का कोई अर्थ नहीं है। वातावरण में युद्ध की लहरें हिलोरें मार रही हैं, और सब एक या दूसरी रीति से लड़ना ही चाहते हैं। खुद आपसे भी शान्ति हो सके, ऐसा मुझे नहीं लगता। फिर भी एक बार कोशिश कर देखिए। मुझे तो यह भी लगता है कि आप-जैसों के प्रयत्नों से कौरव यही समझेंगे कि पाण्डव, कोरी लड़ाई की बातें करके ही जो-कुछ मिले वह ले लेना चाहते हैं। इसलिए मेरा अपना मत तो यह भी हो रहा है कि एक बार दो-दो हाथ बताये बगैर कौरवों को होश नहीं आने वाला है।" अर्जुन बोला।

"मैं भी तो यही कहता हूं। युद्ध का ऐलान करदो और वे खुद ही नाक रगड़ते हुए सामने आयेंगे।" भीम ने दाँत पीसकर कहा।

"लेकिन मुझे जाना चाहिए, यह तो तय है न? संधि न हो तो भी हमारा तो कुछ बिगड़ेगा नहीं। अंतिम बार शान्ति और संधि के लिए प्रयत्न करके देख लें, जिससे मन को संतोष रहे। संधि होजाय तब तो लाभ है ही। इसलिए मैं तो कल ही जाऊँगा।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"जरूर! हमें तैयारी करने के लिए इतने दिन का समय और मिल जायगा, यह लाभ तो होगा ही। श्रीकृष्ण! मुझे जो-कुछ कहना था, वह मैंने आपको विस्तारपूर्वक कह दिया है; फिर भी इस सबके पीछे एक बात तो निश्चित ही है। हम भाइयों ने अपना सारा जीवन आपके हाथों में सौंप दिया है। इसीलिए जब दुर्योधन ने आपसे शस्त्रास्त्रों से सज्जित आपकी सेना मांगी, तब मैंने तो शस्त्र-रहित आपको ही पहले से मांग लिया था। अपने विचार तो हमने आपको बता दिये। अब अन्त में

मेरा कहना यही है कि हस्तिनापुर जाकर आप जो भी निश्चय कर लावें वह हम सबको पूरी तरह मान्य होगा। कहिए महाराज युधिष्ठिर, ठीक है न?" अर्जुन ने कहा।

"इसमें क्या शक है। हम सबने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार कह दिया; लेकिन ऐसे विषयों में कितनी ही बार आपको जो अन्तःस्फूर्ति होती है उसके आगे हम सबकी बुद्धि कुछ काम नहीं करती। श्रीकृष्ण! यह मैं कोई दिखावे के लिए ही नहीं कह रहा हूँ। जीवन में आनेवाली ऐसी-ऐसी अनेक उलझनों में आप जब अपने विचार बताते हैं तब ऐसा मालूम होता है कि मनुष्य के हृदय की गहराई में छिपा हुआ कोई महान् तत्त्व बाहर निकल रहा है, और शास्त्रों के निर्णयों को समझने में कुशल बुद्धि भी उन विचारों को समझने और उनका अनुसरण करने को ललचाती है। इसलिए अर्जुन जो कहता है वह बिलकुल ठीक है। आप जो भी निश्चय करके आवेंगे वह हम पांचों भाइयों को शिरोधार्य होगा। क्यों भीमसेन, नकुल-सहदेव, ठीक है न?"

"इसमें कहने की कोई बात है?" भीम बोला।

"हमें सब मंजूर है।" नकुल-सहदेव बोले।

दूसरे दिन सवेरे ही श्रीकृष्ण हस्तिनापुर के लिए रवाना हो गये।

\+ + +

हिरण्यवती नदी के किनारे पाण्डवों ने अपना पड़ाव डाला। उसके लम्बे-चौड़े साफ मैदान में उन्होंने अपनी छावनी की हद बनाई; और सारी छावनी के लिए एक बड़ा भारी प्रवेश-द्वार बनाया गया। इस छावनी में युद्ध के अलग-अलग विभागों की व्यवस्था की गई थी। छावनी के बीचोंबीच श्रीकृष्ण का डेरा लगाया गया, और श्रीकृष्ण के डेरे के चारों ओर पांचों भाइयों तथा द्रौपदी के अलग-अलग तम्बू थे। छावनी के एक भाग में प्रधान सेनापति धृष्टद्युम्न के लिए व्यवस्था की गई थी; एक ओर महारथियों तथा अतिथियों के अपनी-अपनी सेना के

साथ ठहरने की व्यवस्था थी; एक ओर राजा द्रुपद और उनके पांचाल ठहरे हुए थे, और दूसरी ओर विराट और उनके मत्स्य डेरा डाले हुए थे।

भारतवर्ष के लगभग सभी राजा-महाराजा इस युद्ध में शामिल हुए थे। कोई पाण्डवों की ओर तो कोई कौरवों की ओर। कोई राजा-महाराजा अपनी सेना के साथ जब किसी पक्ष में शामिल होने के लिए आता तो छावनी के मुख्य द्वार पर उसका सत्कार करने के लिए भेरी-मृदंग बजते और छावनी के प्रधान अधिकारी उसका स्वागत करते थे।

भीष्मक राजा का पुत्र और रुक्मिणी का भाई रुक्मि कुण्डिनपुर से अपनी सागर जैसी विशाल सेना लेकर पाण्डवों की छावनी की ओर आया तो मुख्यद्वार पर उसके सत्कार के लिए भेरी और मृदंग का नाद हुआ और महाराज युधिष्ठिर उसका स्वागत करने के लिए बाहर आये।

"पधारिए! पधारिए रुक्मीजी।" महाराज युधिष्ठिर ने स्वागत करते हुए कहा।

"महाराज! आप सब अच्छी तरह तो हैं न? अर्जुन तो अच्छी तरह हैं?" रुक्मी ने पूछा।

"आप राजा-महाराजाओं की शुभेच्छा से हम सब अच्छी तरह हैं। आपने यहां आकर हमें बहुत आभारी किया है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"इसमें तो मैंने कोई बड़ी बात नहीं की। आपके साथ ऐसा घोर अन्याय हो रहा हो तब भी आपका साथ न दें, तो फिर हम किस काम के?" रुक्मी ने कहा।

"अच्छा, अब आप जरा आराम करके स्वस्थ हो लीजिए। आपके लिए शिविर तैयार है, और इस सेना के लिए भी व्यवस्था है ही। सहदेव! आपके साथ जाकर सब व्यवस्था बता दो।" युधिष्ठिर ने कहा।

"पधारिए महाराज! मैं तैयार हूँ।" सहदेव ने कहा।

"महाराज युधिष्ठिर! मैं तो स्वस्थ ही हूँ। अपने शिविर में जाने से पहले मैं एक बात स्पष्ट कर लेना चाहता हूँ।" रुक्मी बोला।

"जो बात स्पष्ट करनी हो वह खुशी से कर लीजिए। यह आपका

कुण्डिनपुर ही है, ऐसा समझकर यहाँ आजादी के साथ रहिए। किसी प्रकार का संकोच करने की कोई जरूरत नहीं है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"देखिए, यह मेरा विजय नामक धनुष है। संसार में तीन ही खास धनुष हैं—एक वरुण का गाण्डीव, दूसरा श्रीकृष्ण का शार्ङ्ग और तीसरा यह विजय। श्रीकृष्ण तो युद्ध में भाग लेंगे नहीं; पर मेरा यह अकेला विजय ही आपको विजय दिलाने में समर्थ है।" रुक्मी बोला।

"इसमें क्या शक है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"निस्सन्देह! आप और आपके राजा-महाराजा सब आराम के साथ अपने-अपने तंबुओं में बैठे रहें, या चाहें तो वे सब अपने-अपने घर चले जांय। मैं अकेला ही इस सारी कौरव-सेना को लड़ाई में खदेड़ दूँगा।" रुक्मी ने कहा।

"आपकी शक्ति से भला कौन अनभिज्ञ है!" युधिष्ठिर ने दाद देते हुए कहा।

"पर एक शर्त है। यह अर्जुन मेरे पांवों पर हाथ रखकर इतना कहदे कि 'मैं भयभीत होगया हूँ, इसीलिए आपकी शरण हूँ।' अर्जुन के इतना कह देने के बाद तो बस फिर रुक्मी है और यह सारी कौरव-सेना है। एक घड़ी मे देखते-देखते युधिष्ठिर के सिर पर हस्तिनापुर का राजमुकुट चढ़ जायगा।" रुक्मी ने सीना फुलाकर कहा।

"आज आप आये कहाँ से हैं?" भीमसेन से न रहा गया।

"भीमसेन, जरा धीरज रक्खो!" अर्जुन ने भीम का हाथ दबाया।

"रुक्मीजी! पहले आप थोड़ा आराम करके स्वस्थ हो लें, उसके बाद हम सब मिलकर विचार कर लेंगे।" युधिष्ठिर ने शांतिपूर्वक कहा।

"मैं तो स्वस्थ ही हूँ। लेकिन इस एक बात का निर्णय हो जाय तो फिर मैं अपने शिविर में जाऊँ।" रुक्मी बोला।

"आपकी सहायता तो हमें जरूर ही चाहिए।" युधिष्ठिर ने कहा।

"नहीं, इस प्रकार नहीं। मैंने जैसे बताया उसी तरह अर्जुन मेरे पाँवों

पर हाथ रखकर कहे।" रुक्मी ने जोर देकर जताया।

"रुक्मीजी!" अर्जुन से न रहा गया, "आप एक बड़ी सेना लेकर हमारी सहायता के लिए आये हैं, इसके लिए हम आपके आभारी हैं लेकिन माफ़ कीजिए, यह आशा तो आप स्वप्न में भी न रक्खें कि अर्जुन आपके चरणों पर हाथ रखकर यह कहेगा कि मैं भयभीत होगया हूँ। अर्जुन ने तो एकमात्र श्रीकृष्ण के चरणों पर ही अपना हाथ रक्खा है। उनके सिवा अर्जुन तीन लोक में और किसी दूसरे के चरणों पर हाथ रक्खे, यह असम्भव है! 'मैं भयभीत हुआ हूँ' यह भला अर्जुन कैसे कहे? आपको शायद पता नहीं है कि विराटनगर में यह अर्जुन अकेला ही सारी कौरव सेना के आगे कूद पड़ा था। अर्जुन पांडु का पुत्र और द्रोणाचार्य का शिष्य है। आपको शायद मालूम नही है कि अर्जुन की पीठ पर किसका हाथ है। रुक्मीजी! आप स्वस्थ होकर रहें तो हम आपको सिर-माथे पर रक्खेंगे; लेकिन अगर स्वस्थ न हो सकें, तो जहां जाना हो वहां जाने के लिए आप स्वतंत्र हैं।"

"अर्जुन, अर्जुन! यह जान लो कि तुम्हारी मौत तुम्हें बुला रही है। तुम्हें मदद करने के लिए राजा-महाराजा तो आवेंगे, लेकिन दूसरा रुक्मी नहीं आवेगा। समझे! विजय धनुष को धारण करनेवाला रुक्मी अगर कौरवों के पक्ष में चला जायगा तो तुम लोगों की क्या हालत होगी, इसका भी कभी तुमने विचार किया है?" रुक्मी बोला।

"मुझे सहायता करने के लिए दूसरा रुक्मी तो शायद आजाय, लेकिन आये हुए रुक्मी को खरे वचन सुनानेवाला दूसरा अर्जुन शायद आपको नहीं मिलेगा। रुक्मी! याद रखना, तुममें जितना अभिमान है उससे दूना अभिमान मन में रखकर दुर्योधन इधर उधर घूमता फिरता है, इसलिए वहां भी तुम्हें ऐसा ही सत्कार मिलेगा।" अर्जुन ने साफ-साफ सुना दिया।

"दुर्योधन अगर तुम्हारे समान नादान होगा तो दूसरी बात है।"

यह कहकर फौरन ही रुक्मी अपनी सेना के साथ पांडवों की छावनी को छोड़कर चल दिया।

: ८ :

धर्म संकट

महाभारत युद्ध के शुरू होने का दिन आखिर आ ही पहुंचा और भगवान् सूर्यनारायण ने अठारह अक्षौहिणी सेना के ऊपर अपनी लाल आंखें डालीं।

दोनों ओर की सेनायें तैयार हो रही थीं; रथों के घोड़े अपने रथपतियों का वाहन बनने के लिए हिनहिना रहे थे। मदोन्मत्त हाथी अपनी सूंडों को इस प्रकार इधर-उधर हिला रहे थे मानो अपने शत्रुओं को खोजते हों। सुन्दर पोशाकों में सजे हुए सारथी अपने हाथ का चाबुक इधर-उधर हिलाते और फटकारते हुए, रथ हांकनेवालों का मनःस्थिति व्यक्त कर रहे थे। महावत हाथ में अंकुश पकड़कर इस तरह छाती ताने बैठे थे मानो विजय की चाबियां उन्हीं के पास हैं। और असख्य क्षत्रिय, वीर कोई तलवार खड़खड़ाते हुए, कोई गदा हिलाते हुए: कोई अपने धनुष को निहारते हुए; तो कोई तीर पर लगे पंखों को ठीक करते हुए, इधर-उधर घूम रहे थे। इनमें से कोई रणभूमि में मरकर स्वर्ग जाने की हविस रखता था तो कोई अपने अबोध बालक की याद में उदास होरहा था। किसी की सहानुभूति पांडवों के साथ थी तो किसीकी कौरवों के साथ। कोई अपनी प्रतिष्ठा के खयाल से तो कोई भविष्य के किसी लाभ से; कोई धर्माधर्म के विवेक से तो कोई धर्माधर्म को समझे बिना युद्ध की घोषणा मात्र से, कोई आपसी संबंध के कारण तो कोई आपसी मैत्री के कारण, कोई जीवन से उकताकर तो कोई यौवन की उमंगों से उछलकर, ऐसे असंख्य क्षत्रिय-वीर भारतवर्ष की इस सनातन रणभूमि में इस तरह घूम रहे थे मानो भारतवर्ष के भविष्य का निर्णय करने के लिए मानव-सागर में ज्वार ही आगया हो! सारे भारतवर्ष में युद्धका ऐसा वातावरण फैल गया कि स्वर्ण-सिंहासनों पर विराजने वाले सिंहासनों पर न रह सके और कुटुम्बीजनों के साथ शांति से जीवन बिताने वाले बहुत इच्छा न होते हुए भी कुटुम्ब-जीवन की गांठों को

थोड़ी देर के लिए ढीली करके युद्ध के लिए चल पड़े ।

कौरव-सेना की ओर से भीष्म पितामह आगे आये। उनके रथ में चार सफेद घोड़े जुड़े हुए थे । उनकी विशाल छाती पर बरफ के समान डाढ़ी फहरा रही थी, शुभ्र-मस्तक पर मुकुट शोभायमान था; और हाथ में धनुष था। उनके रथ के चारो ओर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, जयद्रथ, दुःशासन, शल्य आदि महारथी अपने-अपने रथों मे सुशोभित थे। कर्ण वहां नहीं था; क्योंकि उसकी प्रतिज्ञा थी कि "जबतक भीष्म पितामह सेनापति रहेंगे तबतक मैं नहीं लड़ूंगा।"

पांडव-सेना का सेनापति धृष्टद्युम्न था; लेकिन पांडव-सेना की विजय का आधार तो अर्जुन ही था। खांडवदाह के प्रसंग पर अग्नि ने अर्जुन के लिए वरुण का रथ ला दिया था, अर्जुन उसी रथ में बैठा हुआ था। उसके रथ पर हनुमान के चिह्नवाली ध्वजा फहरा रही थी। रथ के आगे यादववीर श्रीकृष्ण एक हाथ में घोड़े का रास और एक हाथ में चाबुक थामे बैठे हुए थे। श्रीकृष्ण के शरीर पर केसरिया रंग के रेशमी वस्त्र सुशोभित थे और गले में सुन्दर वनमाला थी। रथ के अन्दर अर्जुन हाथ में गाण्डीव लिये बैठा था और उसके पास वरुणदेव के दिये हुए दो अक्षय तूणीर लटक रहे थे। अर्जुन के रथ के चारों ओर यज्ञ कुण्ड में से पैदा हुआ द्रौपदी का भाई धृष्टद्युम्न तथा भीमसेन, शिखंडी, द्रुपदराज, विराट राजा आदि अपने-अपने रथों में बैठे हुए थे।

इतने में भीष्म पितामह ने लड़ाई की शुरुआत का सूचक शंख बजाया। इसके बाद एक-एक कर अनेक शंख बज उठे—इतने जोर से कि आकाश फटने लगा।

इसी समय अर्जुन ने रथ में से श्रीकृष्ण से कहा, "महाराज श्रीकृष्ण ! मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच ले जाकर खड़ा कीजिए, जिससे कि मैं यह देख सकूं कि मुझे इस युद्ध में किस किस के साथ लड़ना है।"

अर्जुन के सारथि श्रीकृष्ण ने रथ को दोनों सेनाओं के बीच लेजाकर

खड़ा कर दिया और अर्जुन ने कौरव-सेना पर इधर-से-उधर तक एक लम्बी नजर डाली।

एकाएक अर्जुन बोल उठा—"महाराज श्रीकृष्ण! जिनकी गोद में बचपन से खेला हूँ ऐसे मेरे पिता के भी दादा यह भीष्म, शिष्य-भाव से अनेक सेवायें करके जिनसे मैंने विद्या सीखी वह द्रोणाचार्य; जिनके साथ गंगा के किनारे पर अनेकबार कई प्रकार के खेल खेलते थे, वे दुर्योधन और उसके भाई, मेरे गुरु का प्राण से भी प्यारा यह अश्वत्थामा; माता माद्री के भाई महाराज शल्य, एकसौ पाँच भाइयों की बहन दुःशला का पति सिंधुराज जयद्रथ: और जिनके अभी मूँछों की रेखायें भी नहीं आई ऐसे मेरे ये भतीजे—इन सबको अपने सामने देखकर मेरे तो होश उड़े जा रहे हैं, मेरा शरीर पसीने-पसीने हो रहा है, मुंह सूखा जा रहा है और गाण्डीव हाथ में से खिसक रहा है! जिनके साथ रहकर हम इस पृथ्वी के भोग भोगना चाहते हैं वे सभी तो मेरे सामने मौजूद हैं। श्रीकृष्ण! इन सबको मारकर इनके खून से सने हुए वैभवों को भोगने की अपेक्षा मैं स्वयं ही कौरव-सेना के हाथों इस युद्ध में मारा जाऊं, इसमें मुझे कहीं ज्यादा कल्याण दिखाई देता है।" यह कहकर अर्जुन ने गाण्डीव को नीचे रख दिया और रथ के पिछले हिस्से में चला गया।

शोक से विह्वल हुए अर्जुन से श्रीकृष्ण कहने लगे, "अर्जुन! यह ऐन मौके पर तुझे मोह कहाँ से आगया? हृदय की पामर निर्बलता को परित्याग कर तू उठ खड़ा हो।"

"लेकिन", अर्जुन ने उत्तर दिया—"भीष्म और द्रोण को कैसे मारूँ? इन लोगों को मारकर पृथ्वी के भोग भोगने की मुझे इच्छा नहीं है। साथ ही, श्रीकृष्ण, यह भी मेरी समझ में नहीं आरहा है कि हमें विजय मिलना ठीक है या कौरवों को। मालूम होता है, मेरी बुद्धि कुंठित हो गई है। हे यदु-वीर! मेरा मन मूढ़ बन गया मालूम होता है। मुझमें सारासार का विवेक नहीं रह गया! प्यारे श्रीकृष्ण! मैंने आपको सिर्फ अपने रथ का सारथि ही नहीं माना है। आप तो मेरे सारे जीवन के सारथि हैं, यही समझें।

हे सखा ! मुझे मार्ग दिखाई नहीं दे रहा है, इसलिए आप मेरे अंधेरे मार्ग में प्रकाश कीजिए।" यह कहते-कहते अर्जुन का गला भर आया और उसका स्वर बहुत दीन होगया।

अर्जुन के रथ पर बैठे हुए श्रीकृष्ण मुसकराते हुए बोले--"भाई अर्जुन ! तेरे मुंह में पंडित की भाषा तो है, लेकिन हृदय में पंडित की विशुद्धि नहीं; बल्कि केवल पामरता और कमजोरी है। तेरी यह पामरता और कमजोरी ऐसी मनोहर भाषा ओढ़कर बाहर आई है कि थोड़ी देर के लिए तुझे खुद को भी यह अच्छी दिखाई दे रही है; लेकिन तू जरा अपने हृदय में टटोलकर देखे तो तुझे खुद ही पता चल जायगा कि यह कमजोरी कितनी बेढंगी और बेडौल है।

"अर्जुन ! तुझे भीष्म के साथ लड़ना है, यह क्या तुझे आज ही मालूम हुआ ? युद्ध में गुरु द्रोण से तेरा मुकाबला होगा, यह क्या आज ही तुझे कोई आकर कह गया है ? तू तो यह सब पहले ही से जानता था, और तूने ही इन सबके खिलाफ युद्ध की घोषणा की है। तेरा यह सब ज्ञान एक ही पल में कहां चला गया ?"

अर्जुन ने जवाब दिया—"श्रीकृष्ण ! जब मैंने यह घोषणा की थी तब युद्ध का क्षेत्र प्रत्यक्ष नहीं था। आज तो यह सब मेरी आंखों के सामने खड़ा हुआ है।"

श्रीकृष्ण फिर जोर से हँसे और बोले—"वाह गांडीवधारी अर्जुन, धन्य है तुझे ! अरे, विराट राजा का पुत्र इस प्रकार कहे तो चल सकता है; लेकिन कुन्ती का पुत्र इस प्रकार बोले तो कैसे काम चलेगा ? यह भी क्या संभव है कि अर्जुन ने कोई प्रत्यक्ष युद्ध ही नहीं देखा या किया हो ? अरे, तू तो संग्राम की गोदी में ही पला और बड़ा हुआ है।"

"तो भी, जब मनुष्य को अपना उठाया हुआ कदम ठीक न लगे, तब क्या उसी समय उसे पीछे हटाने का अधिकार नहीं ?" अर्जुन ने पूछा।

"जरूर है। और ऐसे मौके पर सारी दुनिया का विरोध सहकर भी, चाहे जितना जोखिम उठाकर भी, मनुष्य पीछे हटे इसी में उसकी वीरता

है। लेकिन अर्जुन! तू जितना अपने हृदय को नहीं पहचानता उतना मैं तेरे हृदय को पहचानता हूँ। जीवन में बहुत बार मनुष्य अपने मन को नहीं पहचान पाता। इसलिए ऊपर से कुछ चाहता है, जबकि उसके अन्तर की गहराई में कोई दूसरी ही इच्छा होती है। अर्जुन! ऐसी बात नहीं है कि तुझे यह युद्ध अच्छा नहीं लगता। तू अपने सारे जीवन पर एक नजर डालकर देख, तो तुझे पता लगेगा कि इस युद्ध के लिए ही तो तूने अपने जीवन-भर तैयारियाँ की हैं। द्रोण के पास से तूने अस्त्र-विद्या सीखी और उनसे श्रेष्ठ शिष्य होने का वरदान पाया, उसके बाद द्रुपद को बाँधकर द्रोण को गुरु-दक्षिणा दी। किसी गूढ़ ईश्वरीय संकेत के लिए ही यज्ञ-कुण्ड में से निकली हुई द्रौपदी को स्वयंवर में प्राप्त किया। मेरे साथ रहकर खांडव वन जलाया, तब अग्निदेव ने तुझे यह रथ, यह अक्षय तरकस और यह गांडीव दिया था, इसकी याद है? वरुणदेव यह सब साधन तुझे दें, इसका अर्थ क्या तू नहीं समझा? वनवास के समय तू कैलाश पर गया और भगवान् शंकर ने तुझे पाशुपतास्त्र दिया। अर्जुन! तुझे मालूम होगया होगा कि तेरे पिता इन्द्र ने तेरे लिए कर्ण के कवच-कुण्डल माग लिये हैं। इन सबका एक ही अर्थ है, और वह यह कि जगत् में जिस महासंहार की घड़ियां बीत रही हैं उसका तू नायक है और आज तक का तेरा सारा जीवन इस नायकपद की तैयारी मात्र था। आज इस क्षणिक-मोह से तू अगर लड़ना छोड़ देगा, तो तेरे दिलका एक अरमान रह जायगा और तेरा जीवन आत्मतृप्ति नहीं प्राप्त करेगा।"

अर्जुन रथ के पिछले हिस्से से जरा आगे आया और बोला—"श्रीकृष्ण! मैं अस्त्र के प्रयोगों से भीष्म और द्रोण को मारूं, इसके बजाय क्या यह अच्छा न होगा कि मैं शस्त्रों का ही त्याग कर दूं और ये लोग मुझे मार डालें?"

श्रीकृष्ण फिर बोले—"सखा! तू अपनी बात जिस तरह से कहता है उस तरह तो नहीं, लेकिन दूसरी तरह से ठीक है और ज्यादा अच्छी है। मनुष्य दूसरों को मारकर विजय प्राप्त करे, उसके बजाय खुद मरकर विजय

प्राप्त करे, यह बहुत ऊंची बात है। लेकिन अर्जुन! इस जमाने में अभी लोग हिंसा में इतना आगे नहीं बढ़े हैं कि हिंसा और हिंसा के युद्ध से थक गये हों। हिंसा-हीन युद्ध ईश्वर की सृष्टि में असंभव नहीं है; लेकिन उसे संभव बनाने के लिए लोगों की मनोवृत्ति और समाज की भावना एक खास तरह से ढलनी चाहिए। आज तो लोकमानस उस ओर नजर भी नहीं डालता, न ऐसी भावना को जागृत करनेवाले महान् पुरुष अभी पृथ्वी पर दिखाई पड़ते हैं। आज जब तू मरने की बात कहता है, तभी तेरे मन में ऐसी बात तो है नहीं कि मारने की बनिस्बत मरने में ज्यादा वीरता है। तू तो अपने हृदय की एक भावना के वशीभूत होकर हृदय की उस उलझन को सुलझाने के लिए मरने की बातें करता है। यही तेरी कमजोरी है, इसमें मुझे कोई शक नहीं है।"

"तो कृष्ण! हृदय की इस परेशानी का समाधान हुए बिना तो मुझसे यह गांडीव पकड़ा नहीं जायगा।" अर्जुन ने कहा।

"यह मैं सब समझता हूँ। तुझे युद्ध के अन्त में विजय के सब परिणाम तो चाहिएं; पर विजय-प्राप्ति में भीष्म और द्रोण जैसे बुजुर्गों को मारने की लोकलाज से तू बचना चाहता है। अच्छा, अर्जुन! एक सच्चा रास्ता बताऊँ? देख, इस सारी कौरव-सेना और इसके स्वामी दुर्योधन आदि को अपना दुश्मन मानकर तू लड़ने आया है। ये सब तेरे भाई और सगे सम्बन्धी हैं, इस विचार से तू झिझकता हो,तो तुझे युद्ध का अपना सारा दृष्टिकोण बदल लेना चाहिए। तुझे समझना चाहिए कि तेरा यह युद्ध भीष्म, द्रोण या दुर्योधन के खिलाफ नहीं है। तेरा युद्ध तो दुर्योधन के अन्याय के खिलाफ है, इसलिए दुर्योधन के अन्याय में शामिल होनेवाले भीष्म और द्रोण के भी अन्याय के खिलाफ है। यह ठीक है कि दुर्योधन तेरा भाई है, भीष्म तेरे पितामह हैं, और द्रोण तेरे गुरु हैं; पर मैं तो कहता हूँ कि मनुष्य मात्र मनुष्य का भाई है, यह विचार दृढ़ करके यह समझ ले कि तुझे मनुष्य के खिलाफ नहीं बल्कि उसके अधर्म के खिलाफ लड़ना है।" श्रीकृष्ण ने समझाया।

"सखा ! श्रीकृष्ण ! और कहिए।" अर्जुन की जिज्ञासा बढ़ रही थी।

"अन्याय और अधर्म के खिलाफ लड़ना क्या क्षत्रियों का परम-धर्म नहीं है ? इस अन्याय का पक्षपाती अगर भीमसेन हो तो उससे भी लड़ना चाहिए और दुर्योधन हो तो उससे भी लड़ना चाहिए।" श्रीकृष्ण बोले।

"भीष्म, द्रोण, दुर्योधन आदि को युद्ध में मारकर भी ?"

"हां, उन्हें मारकर भी। जिस मनुष्य के द्वारा समाज मे अन्याय या अधर्म फैलता हो, उसका वध करना सच पूछो तो उसीका कल्याण करना है। और सारे ससार का तो वह कल्याण है ही। संसार के और अपने कल्याण की खातिर पाँच, पचास, सौ, दो सौ, हजार या लाखों शरीरों का नाश हो तो भी कोई बात नहीं है।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"श्रीकृष्ण ! आप जो-कुछ कह रहे हैं वह समझ में तो ठीक ठीक आरहा है। लेकिन," अर्जुन ने पूछा, "यह कैसे हो सकता है कि दुर्योधन के अधर्म पर प्रकोप हो और दुर्योधन पर प्रकोप न हो ? ऐसी स्थिति कब आ सकती है ?"

"अर्जुन !" श्रीकृष्ण ने कहा, "तेरी बात ठीक है। मनुष्य जबतक किसी काम मे तल्लीन होकर लग नहीं जाता तबतक यह कठिनाई तो रहेगी ही, इसीलिए धर्मशास्त्रों में कहा है कि कर्म करो, लेकिन उसका फल ईश्वर पर छोड़ दो। तू भी इसी प्रकार युद्ध कर। अपनी कमजोरी को दूर कर, और अन्त में क्या होगा—जय होगी या पराजय, लाभ होगा या हानि, यह सब ईश्वर के ऊपर छोड़ दे। तेरे हृदय की शांति के लिए यही एकमात्र सच्चा मार्ग है। तू लड़ना बंद करके भाग जायगा तो उससे तो तेरी अन्तर्वेदना उलटे और बढ़ेगी, और उस वेदना के कारण शायद तू आत्महत्या करने पर भी उतारू हो जाय।"

"सखा श्रीकृष्ण ! आप ठीक कहते हैं। मैं लड़े बिना नहीं रह सकता, यह बिलकुल सच है। आपने अनासक्त भाव से युद्ध करने का उपदेश दिया वह मैं अपनी बुद्धि से तो समझ सकता हूँ, लेकिन इस युद्ध में उसपर अमल कैसे हो यह मैं कह नहीं सकता। फिर भी, मेरे जीवन के सारथी

श्रीकृष्ण, इस युद्ध में मैं वैसा करने का प्रयत्न तो करूंगा ही। मनुष्य कर्ममात्र का अधिकारी है, उसके परिणाम का नहीं।' यह जीवन सूत्र अगर समझ में आजाय तब तो मनुष्य निहाल होगया समझो।" अर्जुन ने कहा।

"तो अर्जुन! उठ, गांडीव हाथ में ले। देख, भीष्म पितामह धनुष की टंकार करते हुए तेरी तरफ आरहे हैं। याद रख, युद्ध की विजय का दारोमदार अर्जुन के ही ऊपर है।" श्रीकृष्ण बोले। और लगाम खींच कर रथ को भीष्म के रथ के ठीक सामने ला खड़ा किया।

गांडीवधारी अर्जुन तनकर बैठ गया। गांडीव को उसने हाथ में ले लिया और संहारकाल की अग्नि के समान भीष्म की ओर बढ़ा।

: ६ :

कुरुक्षेत्र के मैदान में

कुरुक्षेत्र के मैदान पर नौ-नौ बार सूर्य उदय होकर अस्त होगया; नौ-नौ भयंकर रातें बीत गईं। भीष्म और अर्जुन; दुर्योधन और भीमसेन, सात्यकि और अश्वत्थामा, द्रोण और द्रुपद नौ-नौ दिन तक एक-दूसरे के सामने जूझते रहे। पर युद्ध का अंत कहीं दिखाई ही नहीं देता था।

इन नौ दिनों में पितामह भीष्म ने पाण्डव सेना में त्राहि-त्राहि मचा दी। सरदी के दिनों में जैसे किसी जंगल में दावानल सुलग उठे और सूखे हुई घास को भस्म करदे; उसी प्रकार भीष्म ने पाण्डवों की सारी सेना को खाक में मिला दिया। अकेले भीष्म के ही हाथों हर रोज दस हजार सैनिक स्वर्ग में जाते। जवान अर्जुन पाण्डव-सेना के आगे रहकर लड़ता; लेकिन बूढ़े पितामह के वेग को रोकने में असमर्थ था। भीष्म ने जीवनभर ब्रह्मचर्य का पालन करके जो शक्ति प्राप्त की थी वह सब इस लड़ाई में लगादी और श्रीकृष्ण जैसे राजनीतिज्ञों को भी चक्कर में डाल दिया। श्रीकृष्ण का संकल्प था कि वह इस युद्ध में शस्त्र न लेंगे; पर इन दिनों भीष्म ने अर्जुन पर दो बार ऐसा धावा बोला कि श्रीकृष्ण-जैसे धीर-गंभीर पुरुष भी अपनी प्रतिज्ञा को भूलकर भीष्म के सामने चक्र लेकर दौड़ उठे।

दसवें दिन का सबेरा हुआ और गाण्डीवधारी अर्जुन रथ में बैठकर पाण्डव-सेना के आगे आया।

"सखा अर्जुन !" श्रीकृष्ण ने कहा, "अब तो हद होरही है। आज तो भीष्म को चाहे जैसे खत्म करना ही चाहिए।"

"श्रीकृष्ण ! मैं अपने प्रयत्न में तो कोई कसर रखता नहीं। युद्ध में तो भीष्म पितामह का साक्षात् शंकर भी मुकाबला नहीं कर सकते; फिर मेरा तो बस ही क्या है ?" अर्जुन ने कहा।

"सखा अर्जुन, यह तेरी भूल है। तू खुद पाण्डुराज का पुत्र और द्रोणाचार्य का शिष्य है। शंकर तथा इन्द्र ने तुझे वरदान दिये हैं। इसलिए तेरी शक्ति भीष्म की शक्ति से किसी प्रकार कम नहीं है। तुझे अपनी शक्ति का भान नहीं है, इसीलिए भीष्म को रथ में बैठे देखकर ही तू हिम्मत हार जाता है, और 'भला इन भीष्म का मुकाबला मै कैसे कर सकता हूं' इस विचार से तेरा गाण्डीव ढीला पड़ जाता है। लेकिन अर्जुन ! यह निश्चय जान कि युद्ध में तुझे विजय प्राप्त करनी है, और भीष्म को मारे बिना विजय की आशा करना व्यर्थ है। इसलिए आज पूरी तरह तैयार हो जा।" श्रीकृष्ण ने अर्जुन को हिम्मत बंधाई।

"लेकिन श्रीकृष्ण........!"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। सिर्फ यही बात ध्यान में रख, कि भीष्म को मारना है। भीष्म चाहे जैसे वीर हों, फिर भी आखिर वृद्ध ही हैं। तेरे जैसा जवानों का जोश और बल उनके हाथों में कहां ? फिर आज तू शिखण्डी को अपने आगे-आगे रखना।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"शिखण्डी को ?"

"हां। यह शिखण्डी पहले शिखण्डिनी नाम की स्त्री थी; पर बाद में पुरुष बन गया। द्रुपद राजा के इस पुत्र को भीष्म अच्छी तरह पहचानते हैं। स्त्री से युद्ध न करने की भीष्म की प्रतिज्ञा है। ऐसा भीष्म

ने ही कई बार स्वयं कहा है। इसलिए तू शिखण्डी को आगे रखकर भीष्म के ऊपर तीर चलाना।" श्रीकृष्ण बोले।

"श्रीकृष्ण, इसमें अर्जुन का क्या पराक्रम हुआ?" अर्जुन ने पूछा।

"अर्जुन! अगर तुझे विजय प्राप्त करनी हो, तो भीष्म को मारने में ही कल्याण है। शिखण्डी को आगे किये बिना भीष्म को मारना मुश्किल है! ऐसे नाजुक मौके पर मनुष्य को अपना निर्णय जल्दी ही करना चाहिए। कौन-सा कदम आगे रखना और कौन-सा पीछे, इस विचार में जो भूलता रहता है वह लाखों मनुष्यों का भविष्य अपने हाथ में रक्खे यह उचित नहीं है।" श्रीकृष्ण ने दृढ़तापूर्वक जताया।

"अच्छी बात है। तो आज मैं भीष्म को मारूंगा।" अर्जुन ने कहा।

"इस तरह बेहिम्मती से मत बोल। मन में पूरा निश्चय करले।" श्रीकृष्ण ने अर्जुन को और प्रोत्साहन दिया।

"श्रीकृष्ण! मैं बेहिम्मती से नहीं कहता। मैं आपको अपना दृढ़ निश्चय बताता हूं कि आज मैं भीष्म को जरूर रणभूमि में मार गिराऊंगा!" अर्जुन ने जताया।

"तो फिर शिखण्डी के रथ को आगे करके अपने गाण्डीव से तीर चला।"

यह कहकर श्रीकृष्ण अर्जुन का रथ भीष्म के रथ के सामने ले आये और युद्ध शुरू हुआ।

× × ×

भीष्म पितामह की मृत्यु के बाद दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को सेनापति बनाया। द्रोणाचार्य ने पांच दिन तक कौरव-सेना का नेतृत्व किया। इन पाचों दिनों में दुर्योधन ने यह चाल चली कि द्रोणाचार्य युधिष्ठिर को जीवित ही पकड़कर कौरवों के सुपुर्द करदें तो युधिष्ठिर और उनके चारों भाई फिर लम्बे समय के लिए वनवास सेवन करे और दुर्योधन युद्ध में लाखों मनुष्यों की जानें गंवाये बिना हस्तिनापुर का सम्राट् बना

रहे। द्रोणाचार्य को दुर्योधन की इस चाल के सफल होने में सन्देह था, फिर भी उसे आजमा देखने के लिए वह राजी थे। इसलिए अर्जुन को कुरुक्षेत्र के युद्ध से थोड़ी दूर भटकाकर अटकाने का उन्होंने निश्चय किया। कौरव-सेना में त्रिगर्त लोग अपने राजा के साथ युद्ध में शामिल हुए थे। उन्होंने कुरुक्षेत्र से कुछ दूरी पर अलग ही एक युद्ध शुरू किया और अर्जुन को ललकारकर उधर ले गये। इधर पाडव-सेना अर्जुन के बगैर ही द्रोण से लोहा ले रही थी।

... ...

एक दिन शाम को त्रिगर्तों को पराजित करके अर्जुन तथा श्रीकृष्ण अपनी छावनी में लौट रहे थे।

"श्रीकृष्ण!" रास्ते में अर्जुन ने पूछा, "आज हमने त्रिगर्तों को पराजित किया, उसके लिए मुझे आनंद होना चाहिए था, उसके बदले मेरा हृदय बहुत भारी क्यों मालूम पड़ता है?"

"कई बार ऐसा होता है कि भविष्य में होनेवाली कोई घटना इस रूप में अपनी छाया मनुष्य के दिल पर डाला करती है कि मनुष्य उसे समझ नहीं पाता।" श्रीकृष्ण ने जवाब दिया।

"आप ठीक कहते हैं। रथ को जरा जल्दी चलाइये। हमारी छावनी में सब सुरक्षित तो होंगे न?" अर्जुन ने पूछा।

"सखा अर्जुन! युद्ध का मामला है, इसलिए कुछ कह नहीं सकते।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"छावनी तो यह आगई। लेकिन आज यह सब इतना सूना-सूना क्यों दिखाई देता है? हम लोग रोज जब वापस आते थे तब अभिमन्यु हमारे सामने आता हुआ दिखाई देता था। आज तो वह भी नहीं दिखाई देता! सारी छावनी में मानो मृत्यु की-सी शांति विराज रही हो ऐसा मालूम पड़ता है।" अर्जुन दबे हृदय से बोलने लगा।

"सखा! जरूर कुछ-न-कुछ गड़बड़ी हुई है।" श्रीकृष्ण बोले।

और इतने में रथ के घोड़े तम्बू के द्वार के पास आ पहुंचे। अर्जुन

रथ से नीचे उतरा, उसके पीछे श्रीकृष्ण भी। दोनों तम्बू में गये।

तम्बू के अन्दर युधिष्ठिर आदि खामोश बैठे थे। उनके चेहरे उतरे हुए थे, सिर नीचे झुक रहे थे, आंखें जमीन में गड़ी जा रही थीं, हाथ पैर मानो ठिठुर गए थे, उनके सारे अंग बिलकुल ढीले पड़ रहे थे। अर्जुन और श्रीकृष्ण आकर बैठे, लेकिन कोई कुछ बोला नहीं। अर्जुन ने चारों तरफ एक नजर डाली और तम्बू की शांति को चीरता हुआ बोला, "महाराज युधिष्ठिर! आज आप सब लोग किसलिए शोक कर रहे हैं? क्या आचार्य ने हमारे किसी महारथी को मारा है? भीमसेन! तुम आज अपना वह अदम्य उत्साह कहां गमा बैठे हो? नकुल-सहदेव! हमारा अभिमन्यु आज क्यों नहीं नजर आ रहा है? महाराज! उत्तर दीजिये। आप बोलते क्यों नहीं?"

"भाई अर्जुन! किस मुंह से बोलूं? एक महारथी नहीं मारा गया, बल्कि हम सब मारे गए हैं।" युधिष्ठिर बोले।

"हुआ क्या, यह तो साफ-साफ बताइए?" अर्जुन अधीर होगया।

"हम लोगों ने अपना अभिमन्यु गंवा दिया!" भीमसेन ने हिम्मत करके कहा।

"ऐं! सच कहते हो? मेरा अभिमन्यु! इन श्रीकृष्ण का भांजा! सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु!" अर्जुन एकदम सन्नाटे में आ गया। "श्रीकृष्ण! अपने रास्ते में ही अपशकुन हो रहा था। युधिष्ठिर! मेरी जरा-सी गैरहाजिरी में आप एक अभिमन्यु को भी नहीं बचा सके? भीमसेन! तुम सब लोग जी रहे थे, फिर भी अभिमन्यु को आगे करते हुए शर्म नहीं आई? मेरे प्यारे बेटे को मारा किसने?" अर्जुन विह्वल हो गया।

"महाराज युधिष्ठिर! ऐसी क्या बात हो गई, जिससे अभिमन्यु मारा गया?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"महाराज श्रीकृष्ण! आप और अर्जुन त्रिगर्तों से लड़ने गये, उसके बाद आचार्य ने चक्रव्यूह बनाया। हममें से किसी को भी चक्रव्यूह

तोड़ना नहीं आता था। या तो सिर्फ अर्जुन ही जानता है, या फिर अभिमन्यु जानता था।" युधिष्ठिर बोले।

"हां, मैंने अभिमन्यु को यह विद्या सिखाई थी।" अर्जुन बीच में ही बोल उठा।

"फिर?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"इस कारण हमने चक्रव्यूह को तोड़ने के लिए अभिमन्यु को आगे किया।" युधिष्ठिर बोले।

"अभिमन्यु को छः द्वार ही तोड़ना आता था, सातवां नहीं, यह क्या आपको मालूम नहीं था?" अर्जुन ने पूछा।

"जानते थे। लेकिन एक बार अभिमन्यु अगर रास्ता खोल दे तो मैं फिर उसके पीछे हो जाऊं और सबको बिखेर दूंगा, ऐसी मेरी धारणा थी।" भीम बोला।

"तो फिर तुम अभिमन्यु के पीछे गये?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"गये तो सही।" भीम बोला।

"तो फिर?" अर्जुन उतावला हो रहा था।

"लेकिन सिन्धुराज जयद्रथ ने रास्ते में हमें रोक लिया।" भीम बोला।

"जयद्रथ ने? द्वैतवन से जिसे जीता जाने दिया गया उसी जयद्रथ ने?" अर्जुन ने पूछा।

"हां, उसी जयद्रथ ने। हम सबने बहुत कोशिश की, लेकिन जयद्रथ को हम हरा नहीं सके।" भीम शर्माते हुए बोला।

"तो फिर प्यारा अभिमन्यु वापस लौटा ही नहीं?" अर्जुन ने पूछा।

"लौटता कैसे? व्यूह के अन्दर अभिमन्यु ने चारों ओर त्राहि-त्राहि मचादी; लेकिन जहां एक अभिमन्यु के सामने छः महारथी इकट्ठे हों, वहां वह अकेला बालक क्या करे? आखिर वह शेर का बच्चा हजारों को

मारकर पृथ्वी पर लेट गया और हम सबको शोक सागर में डुबो गया।" युधिष्ठिर बोले।

"भाइयो! सुनो! जिस जयद्रथ ने मेरे प्यारे अभिमन्यु के पीछे जाते हुए भीमसेन आदि को रोका और इस वजह से मेरे वीर पुत्र की मृत्यु का कारण हुआ, उस जयद्रथ को मैं कल सूर्यास्त के पहले मार डालूंगा। ऐसा न हुआ तो मैं स्वयं चिता में आग लगा कर जल मरूंगा!" अर्जुन ने प्रतिज्ञा की।

"धीरज रक्खो, अर्जुन, जरा शान्ति से काम लो।" श्रीकृष्ण बोले।

"प्यारे श्रीकृष्ण! शान्ति कैसे रक्खूं? मेरे लिये तो सारा संसार जहर के समान हो गया, और आप शान्त रहने को कहते हैं! भला सुभद्रा मुझे क्या कहेगी? और बेटी उत्तरा से मैं क्या कहूँगा?" अर्जुन आवेश में बोल रहा था।

"यह तो युद्ध है।" श्रीकृष्ण बोले, "और उसमें शांति रखनी ही पड़ती है। सुभद्रा का तो सिर्फ एक ही अभिमन्यु गया, लेकिन कितनी ही सुभद्राओं ने इस युद्ध में न जाने कितने अपने अभिमन्युओं को गंवाया होगा, यह भी सोचना चाहिए न?" श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया और बोले—"चलो, अब सुभद्रा के पास चलें।" और अर्जुन को सुभद्रा के पास ले गये।

× × ×

सबेरे ही सबेरे रथ को लड़ाई के मैदान में आगे लाते हुए श्रीकृष्ण बोले, "अर्जुन! इसीलिए तो मैं कहता था कि गम्भीर प्रतिज्ञायें करने से पहले खूब विचार कर लेना चाहिए। गुप्तचरों की बातें सुनी न?"

"सुनीं तो। लेकिन इससे क्या हुआ?" अर्जुन बोला।

"हो तो सब कुछ गया! जयद्रथ तो रातोंरात सिंधु देश भाग जाने के लिए तैयार होगया था, लेकिन द्रोणाचार्य ने उसे अभयदान देकर

रोक लिया है; इसलिए आज सारे कौरव अकेले जयद्रथ को बचाने में ही लगेंगे और उसे सब के पीछे रक्खेंगे।" श्रीकृष्ण बोले।

"रखने दो सबसे पीछे !" अर्जुन बोला।

"अर्जुन ! यह कहना आसान है। पर क्या तू यह मानता है कि द्रोण के सेनापति रहते हुए तू आज एक ही दिन में सारी कौरव सेना का संहार करके जयद्रथ के पास पहुँच जायगा ?" श्रीकृष्ण जरा गरम होकर बोले "शत्रु के बल की उपेक्षा करने में वीरता नहीं है।"

"तो फिर सूर्यास्त के बाद चिता पर चढ़ जाऊंगा।" अर्जुन बोला, "अभिमन्यु के चले जाने से मेरे जीवन में अब स्वाद ही नहीं रह गया है।"

श्रीकृष्ण जरा गुस्से में आकर बोले— "जीवन में स्वाद क्या है ? अर्जुन ! जीवन में बहुत से स्वाद चखने बाकी हैं अभी तुमको। अभी अभिमन्यु की मृत्यु का रंज ताजा है, इसलिए यह वैराग्य दिखाई देता हो, पर हृदय की गहराई में अभी अनेकों आशायें भरी हुई हैं और उन्हें पूरी किये बगैर चैन भी नहीं मिलने की। अर्जुन ! दूसरी बातों को अब जाने दो। तुमने जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा की है; लेकिन द्रोणाचार्य हर तरह से उसकी रक्षा करने वाले हैं। इसके लिए मैंने तो एक युक्ति सोच रक्खी है।"

"क्या ?"

"मुझे तो विश्वास है कि तू चाहे जितनी मेहनत कर, फिर भी आज सूर्यास्त से पहले तू जयद्रथ के पास तक नहीं पहुँच सकता।" श्रीकृष्ण बोले।

"मुझे तो ऐसा लगता है कि मैं जरूर पहुँच जाउंगा।" अर्जुन ने जवाब दिया।

"मानले कि तू न पहुँच सका।"

"तब तो फिर मुझे मरना ही है।" अर्जुन ने कहा।

"नहीं ! जब तू नहीं पहुँच पायेगा तो सूर्यास्त से कुछ समय पहले

सूर्य को मैं अपने सुदर्शन चक्र से ढक दूंगा, जिससे सबको यह मालूम पड़ेगा कि सूर्यास्त होगया है।" श्रीकृष्ण बोले।

"उससे क्या होगा?" अर्जुन बोला।

"सबको लगेगा कि सूर्यास्त होगया और हम लोग चिता की तैयारी में लग जायेंगे। तब जयद्रथ वगैरा, मृत्यु के मुख में से बच गये हों, इस प्रकार खुश होकर इधर-उधर घूमने लगेंगे।" श्रीकृष्ण बोले।

"जरूर। उसे तो ऐसा ही लगेगा मानो नया जन्म हुआ है!" अर्जुन बोला।

"ठीक इसी समय जरा भी गफलत किये बगैर तू जयद्रथ की ओर ताक कर तीर छोड़ना, और फिर वृक्ष पर से पका हुआ फल जैसे नीचे गिरता है उसी प्रकार जयद्रथ के धड़ परसे उसका सिर नीचे आ गिरेगा।" श्रीकृष्ण बोले।

"जयद्रथ को इस तरह मारें?" अर्जुन जरा झिझकते हुए बोला।

"विजय प्राप्त करना हो और प्रतिज्ञा का पालन करना हो, तो यही मार्ग है। और अगर अभिमन्यु के पीछे यमराज का द्वार देखना हो, तो फिर सूर्यास्त की भी राह देखने की जरूरत नहीं है।" श्रीकृष्ण बोले।

"अच्छा, तो फिर जैसा आप कहते हैं वैसा ही करूंगा।" अर्जुन ने कहा।

"एक बात और।" श्रीकृष्ण ने कहना शुरू किया।

"वह क्या? अर्जुन ने पूछा।

"जयद्रथ के पिता यहां से पास ही तपस्या कर रहे हैं। तुझे तीर का ऐसा निशाना लगाना चाहिए कि वह जयद्रथ के सिर को लेकर उसके पिता की गोदी में जाकर गिरे, नहीं तो जयद्रथ का सिर पृथ्वी पर गिराने वाले के सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे, ऐसा उसे शंकर का वरदान है।" श्रीकृष्ण बोले।

"अच्छी बात है। ऐसा ही करूँगा।" अर्जुन ने स्वीकार किया।

"तो अब रथ को आगे लाता हूँ। देख, यह सामने सारी कौरव-सेना खड़ी है। देखले, जयद्रथ कहीं दिखाई देता है? वह तो सेना के ठीक बीचोंबीच अन्त के एक भाग पर खड़ा है। ठीक सामने गुरु द्रोण ही खड़े हैं। सखा! अब एक जोर का धावा बोलो। जयद्रथ की रात आज अपनी शय्या में बीतने वाली नहीं है, यह निश्चय जानो श्रीकृष्ण ने यह कहकर रथ को द्रोणाचार्य के सामने ला खड़ा किया।

× × ×

द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य का सिर उतार लिया, यह समाचार जब अश्वत्थामा ने सुना तो उसके क्रोध और शोक का पार न रहा। और इसी शोक-क्रोध में उसने सारी पाण्डव सेना नष्ट कर डालने के इरादे से नारायणास्त्र का प्रयोग किया।

नारायणास्त्र के छूटते ही चारों ओर अंधेरा होगया। अस्त्रों में से एक साथ दूसरे हज़ारों तीर, गदा, तलवार, भाले वगैरा निकलने लगे और पाण्डव सेना अभी द्रोण के वध की खुशी मनाकर तृप्त हुई भी नहीं थी कि ऐसा लगने लगा मानो सभी मृत्यु के मुँह में चले जा रहे हैं।

"अर्जुन!" युधिष्ठिर बोले, "थोड़ी देर पहले तो कौरव-सेना इधर-उधर भाग रही थी, उसे किसने आवाज देकर खड़ा कर दिया? ये हमारी सेना के चारों ओर जो अनेक प्रकार के अस्त्र उड़ते हुए दिखाई देते हैं, यह किसका प्रताप है?"

अर्जुन ने चिढ़कर जवाब दिया—"धर्मराज युधिष्ठिर! आपने असत्य बोलकर द्रोणाचार्य को मरवाया है। इसीसे क्रोधित होकर गुरुपुत्र अश्वत्थामा ने नारायणास्त्र का प्रयोग किया है। भाई साहब, आपने बहुत बुरा किया। द्रोण चाहे जैसे हों, फिर भी हमारे गुरु ही तो थे। आप को तो वह हमेशा अजीत शत्रु कहते थे, इसी कारण किसी और के कहने पर विश्वास न करके उन्होंने आप से पूछा। आपने सत्य के लिबास में

असत्य बोला। आपके कथन पर गुरुद्रोण ने विश्वास किया और हाथ से शस्त्र रख दिये। भाईसाहब! इस पाप का प्रायश्चित तो अब हम सबको करना ही पड़ेगा। गुरुपुत्र ने जिस नारायणास्त्र का प्रयोग किया है वह हम सबका विनाश कर देगा।"

अर्जुन यह कह ही रहा था कि नारायणास्त्र का प्रताप बढ़ते हुए ऐसा मालूम होने लगा मानो सारी पाण्डव-सेना के चारों ओर कालाग्नि व्याप गई हो। चारों ओर हाहाकार मच गया और पाण्डव-सेना के योद्धा नारायणास्त्र से बचने के लिए इधर-उधर भागने लगे।

अर्जुन के उलहने से युधिष्ठिर दीन होगये और क्रुद्ध होकर बोले–"द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न! तुम अपनी सेना को लेकर तुरन्त ही वापस चले जाओ। सात्यकि! आप भी अपने यादव वीरों की रक्षा करने के लिए जहां जाना हो वहां चले जाइये। वासुदेव अपने लिए स्वयं रास्ता कर लेंगे। सब योद्धा जहाँ उन्हें मार्ग मिले और बच सकें वहाँ भाग जायें और अपनी रक्षा करलें। भीष्म और द्रोण रूपी दो महासागरों को तो मैं तर गया, लेकिन आज इस अश्वत्थामा रूपी गढ़े में डूब जाने वाला हूँ। जहाँ भाई अर्जुन को ही मेरा अपराध मालूम पड़ता हो, वहाँ दूसरे किसी से क्या आशा? मैं अभी अग्नि में प्रवेश कर रहा हूँ। दुर्योधन भले ही सुखपूर्वक पृथ्वी का राज्य करे।"

युधिष्ठिर के ऐसे वचन सुनकर पास में खड़ा हुआ भीमसेन बोला—"अर्जुन! आज तक युधिष्ठिर धर्म की बातें कहकर हमें परेशान करते थे। लेकिन आज अब युधिष्ठिर ने धर्म की बातें करना जरा बंद की तो वह धर्म अब तेरी जबान पर चढ़ गया, क्यों? द्रोण को हमने अधर्म से मारा यह ठीक है, लेकिन द्रोण गुरु के अधर्म की भी किसी दिन तुमने नाप तोल की थी? अर्जुन! जो लोग दूसरों के दोषों को न देखकर केवल अपना ही दोष देखा करते हैं, वे मोक्ष-मार्ग में आगे चढ़ते होंगे, लेकिन व्यवहार में तो एकदम कोरे ही रहते हैं। महाराज युधिष्ठिर ने जो-कुछ किया वह ठीक ही था, इसलिए तेरा उनको उलहना देना ठीक नहीं है।"

इधर भीम बोल ही रहा था कि इतने मे श्रीकृष्ण अर्जुन के रथ पर चढ़ गये और पाण्डव-सेना को सम्बोधन करके जोर से कहने लगे— "पाण्डव-सेना के सेनापतियो ! अश्वत्थामा ने नारायणास्त्र का प्रयोग किया है, इसलिए तुम लोग अगर रथ में बैठे हो तो रथ में से उतर पड़ो, हाथी पर हो तो हाथी पर से नीचे उतर जाओ, घोड़े पर हो तो घोड़े पर से उतर जाओ और तुम्हारे पास जो भी कोई शस्त्र हो उसे छोड़कर शांति के साथ नीचे खड़े रहो। नारायणास्त्र को शान्त कर देने का यही एक उपाय है।"

श्रीकृष्ण के यह कहने के साथ ही अर्जुन रथ पर से नीचे उतरा और अर्जुन की देखादेखी सभी योद्धा नीचे उतर गये।

पर भामसेन यह कैसे मानता ?

"अर्जुन ! तूने महाराज को उलहना दिया है, तो मैं अकेला ही नारायणास्त्र का सामना करने के लिए जाता हूँ, और देखता हूँ कि द्रोण का पुत्र मेरा क्या कर सकता है।" यह कहता हुआ भीमसेन नारायणास्त्र की सीमा के ठीक बीचोंबीच चला गया और नारायणास्त्र की प्रयलयकारी अग्नि उसके चारों ओर घिर गई।

"श्रीकृष्ण !" अर्जुन घबरा कर बोला, "देखिए तो भीमसेन अन्दर चला गया। हम अगर नहीं जायेंगे तो वह न जाने क्या कर बैठेगा।" और तुरन्त ही श्रीकृष्ण तथा अर्जुन भीम के पीछे दौड़े आये।

भीम ठेठ अन्दर पहुँच गया था। दोनों वीर वहाँ पहुँचे और अर्जुन ने बड़ी मेहनत से हाथ पकड़कर भीमसेन को बाहर निकाला।

"भीमसेन ! तुम भी बड़े वैसे हो। श्रीकृष्ण जब सारी सेना को कहते हैं कि 'अपने वाहनों पर से नीचे उतर जाओ और हथियार छोड़कर शान्त खड़े रहो" तो उनका कहना भी नहीं माना और यहां भाग आये !" अर्जुन ने कहा।

"द्रोण को मारने का यश भाईसाहब को देने के बदले जब तू सारी सेना के सामने उनकी बेइज्जती करने लगा, तब भीम के लिए दूसरा

उपाय ही क्या था ?" भीम ने कठोरता के साथ कहा।

"भाई भीमसेन !" श्रीकृष्ण ने कहा, "तू ठीक कहता है, और अर्जुन भी ठीक कहता है। आज तो तुम सब युद्ध के भूखे हो, सो एकबार खूब पेट भरके लड़ लो, फिर जब युद्ध के अंत में विचार करने बैठेंगे, तब क्या धर्म और क्या अधर्म इसका निर्णय कर लेंगे। या फिर ईश्वर ने प्रत्येक मनुष्य के हृदय में धर्माधर्म का जो सूक्ष्म काँटा लगा दिया है उसीसे हरेक अपना-अपना निर्णय कर लेगा और हरेक को अपने उस निर्णय के अनुसार इस विजय का स्वाद आवेगा। आज तो भीमसेन ! तुझे रथ से नीचे उतर कर अर्जुन के समान ही हथियार छोड़कर खड़ा रहना चाहिए।"

भीमसेन ने श्रीकृष्ण का निर्णय स्वीकार किया और प्रतिस्पर्धी के अभाव में अश्वत्थामा का नारायणास्त्र शान्त होगया।

: १० :

अशस्त्र वध

महाराज युधिष्ठिर अपने तंबू में एक सुनहले पलंग पर लेटे हुए थे। उनके शरीर में जगह-जगह घाव हो रहे थे और उनकी मरहम-पट्टी होरही थी। कितने ही दास-दासियाँ उनकी सार-सम्हाल कर रहे थे। उनके चेहरे पर दुःख और ग्लानि स्पष्ट दिखाई दे रही थी।

अपने तंबू में श्रीकृष्ण और अर्जुन को आते देख युधिष्ठिर बोले, "क्यों श्रीकृष्ण ! ऐसे बेवक्त आप यहाँ कैसे ?"

"आप तो कर्ण के साथ युद्ध कर रहे थे। वहाँ से एकाएक आप अदृश्य हो गये। यह देख मुझे चिन्ता हुई और खोज करते समय समाचार मिला कि आप अपने खीमे में चले आये हैं, इसलिए हम लोग आपको खोजते हुए यहाँ चले आये।" अर्जुन ने जवाब दिया।

"बहुत अच्छा किया भाई, जो मेरी खोज करते-करते इधर आगये।" युधिष्ठिर लेटे-लेटे उठ बैठे और कहने लगे, "मेरे बड़े भाग्य जो मेरी

खोज करते हुए तुम यहाँ आ तो पहुँचे। पर अर्जुन, कर्ण को तो मार आये हो न?"

"महाराज! अभी तो वह जीवित है और प्रलयकाल की अग्नि को भांति हमारी सेना का संहार कर रहा है।" अर्जुन बोला

"जहाँ तू होगा वहाँ और होगा क्या? अर्जुन! तुझपर मैंने आशा के जो बड़े-बड़े महल खड़े कर रक्खे थे वे सब आज ढह पड़े। भीमसेन ही मेरा सच्चा भाई निकला। उसने हम सबको कई संकटों में से बचाया और आज भी वह हजारों हाथियों और अनेक महारथियों का नाश किये बगैर छावनी में लौटनेवाला नहीं है। तू आचार्य द्रोण का प्रिय शिष्य माना जाता है, तेरे पास गांडीव, रथ, तूणीर आदि सभी साधन हैं; भगवान शंकर जैसों ने तुझे पाशुपतास्त्र दिया और श्रीकृष्ण जैसे तेरे सारथी बने; इतने पर भी तेरे हाथों कर्ण अभी नहीं मरा! अर्जुन! तूने तो कर्ण को मारने की प्रतिज्ञा की है, फिर भी 'कर्ण तो अभी जीवित है' कहते हुए तुझे शर्म नहीं आती? मुझे जो चोटें लगी हैं उन्हें देख। अगर पहले से ही मुझे तेरी निर्वीर्यता का खयाल होता, तो युद्ध की तैयारी करने के पहले ही हम चारों विचार करते, और तुझ पर जरा भी आधार न रखते। युद्ध को शुरू हुए आज चौदह दिन हो गये, लेकिन तू तो रथ में बैठकर इधर--उधर दौड़-भाग ही करता रहा है। भीष्म को शिखंडी ने मारा; जयद्रथ को मारना तेरे लिए भारी होगया था, और श्रीकृष्ण न होते तो तुझे ही चिता में जलना पड़ता; द्रोण का वध तो किया धृष्टद्युम्न ने और उसमें मेरा अधर्म बताने तू झट दौड़ आया। और यह सूतपुत्र कहलाने वाला कर्ण जिस प्रकार सिंह बकरों को मार डालता है, उसी प्रकार हमारी सेना का संहार कर रहा है, फिर भी तेरी आखें नहीं खुलतीं। अर्जुन! तू अपना गाण्डीव किसी दूसरे को देदे और श्रीकृष्ण के रथ में किसी दूसरे को बैटा, तो उसकी मेहनत कुछ काम तो आये। अर्जुन! तू मुझे यहाँ क्यों अपना मुंह दिखा रहा है?" बोलते-बोलते महाराज युधिष्ठिर का शरीर काँपने लगा, उनकी आवाज थरथराने लगी। उनकी

आंखों में क्रोध था, और उनके घाव मानों पट्टियों के अंदर से फटे जा रहे थे।

अर्जुन युधिष्ठिर के पलंग के पास बैठे-बैठे सब बातें सुन रहा था। उसका मन अन्दर-ही-अन्दर न जाने कहाँ जाता था। उसका सारा शरीर कांपने लगा, होठ फड़कने लगे, और आंखों में खून उतर आया। एकाएक उसका हाथ अपनी कमर पर गया और नागिन के समान तलवार म्यान में से बाहर निकल आई।

श्रीकृष्ण यह देख एकाएक खड़े हो गये और अर्जुन का हाथ पकड़ते हुए बोले—"अर्जुन! यह क्या?"

"श्रीकृष्ण! इस समय हट जाइए! आज युधिष्ठिर का सिर सुरक्षित नहीं है।"

"अर्जुन! तू यह क्या कह रहा है और किसके सामने बोल रहा है, इसका भी भान है?" श्रीकृष्ण बोले।

"श्रीकृष्ण! मुझे छोड़ दीजिए।" अर्जुन क्रोध में काँपता हुआ बोला, "मुझे इस समय कुछ भी नहीं सूझ रहा है। मेरा गाण्डीव किसी दूसरे को देने की जो बात करे उसका अन्त कर देने की प्रतिज्ञा है।"

"हाँ, मैं जानता हूँ कि तेरी ऐसी प्रतिज्ञा है।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"फिर आज युधिष्ठिर का सिर धड़ से अलग होना ही चाहिए।" अर्जुन ने कहा।

"अर्जुन किसके सिर की बात कर रहा है यह भी तुझे भान है?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"श्रीकृष्ण! आप सामने से हट जाइए।" अर्जुन ने जोर देकर कहा, "हम बर्षों से सहन करते आ रहे हैं। पर अब सहन नहीं हो सकता। ये जब तक जीते रहेंगे तब तक हमारी गाड़ी ठीक रास्ते चलने वाली ही नहीं।"

"वीर अर्जुन! कुन्ती के पुत्र अर्जुन! द्रोण के शिष्य अर्जुन! ये शब्द तेरे मुंह को शोभा नहीं देते।" श्रीकृष्ण ने कहा, "कुन्ती का

पुत्र अर्जुन तो जरूरत से ज्यादा बोलता ही नहीं, और जब बोलता है तब चमड़े की जीभ से नहीं बल्कि गाण्डीव की जबान से बोलता है।"

"श्रीकृष्ण! यह ठीक है कि मैंने अपने रथ की बागडोर आपको सौंपी है, पर इस समय मेहरबानी करके आप यहां से हट जाइये। मैं सिर्फ एक ही वार करने की छूट चाहता हूँ।" अर्जुन बोला, पर उसका हाथ ढीला पड़ता जा रहा था।

"अच्छी बात है। लेकिन वह वार तू मेरी गर्दन पर कर। मित्र के हाथ की मौत भला कहाँ नसीब होती है!" श्रीकृष्ण बोले।

"सखा श्रीकृष्ण! आप युधिष्ठिर को बचाकर अर्जुन को गँवा देने को तैयार हों तो ठीक है।" अर्जुन ने कहा, और यह कहते ही उसकी तलवार वापस म्यान में चली गई।

"अर्जुन को गँवाने को तो मैं क्या आज सारा त्रिभुवन भी तैयार नहीं है। यह अठारह अक्षौहिणी की जो बाजी लगा रक्खी है वह अर्जुन ने ही तो लगा रक्खी है, यह मालूम है न?" श्रीकृष्ण बोले।

"नहीं, नहीं! मैंने नहीं। यह तो जो पलग पर पड़े हुए हैं उन्होंने लगा रक्खी है।" अर्जुन ने युधिष्ठिर की ओर इशारा किया।

"अच्छा, श्रीकृष्ण। अब आप जाइए। मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार युधिष्ठिर को नहीं मारता, इसलिए तलवार का वार मैं अपनी गर्दन पर ही करूंगा। आप रथ लेकर युद्ध में जाइए।" अर्जुन बोला।

"महाराज युधिष्ठिर!" श्रीकृष्ण ने कहा, "सुना आपने?"

"कभी से सुन रहा हूँ। कई बार आत्महत्या करने का विचार करता हूँ, लेकिन आत्महत्या करने वाले को असुर लोक में जाना पड़ता है इसी विचार से अपने को रोक लेता हूँ।" युधिष्ठिर बोले।

"अर्जुन! तो देख, हम सब ऐसा रास्ता निकालें जिससे तेरी प्रतिज्ञा पूरी हो जाय। युधिष्ठिर तेरे बुजुर्ग हैं। बड़ों को हलकेपन से बोलना और उनका अपमान करना, उनके वध के बराबर है। इसलिये तू युधिष्ठिर को तू कहकर सम्बोधन कर और उनका अपमान कर, ऐसा करने से

तेरी प्रतिज्ञा का पालन हो जायगा और मेरी बात भी रह जायगी।" श्रीकृष्ण ने रास्ता निकाला।

इस मार्ग को अनिच्छा से स्वीकार करते हुए अर्जुन बोला—"धर्म के ढोंगी युधिष्ठिर! पाण्डवों का अनिष्ट करने वाला तू ही है! आज तक बड़ा भाई बनकर तूने हम सबसे खूब सेवायें करवाई हैं और अपनी भूलों का नतीजा भी हमने खूब सहन किया है। जब तब धर्म के नाम पर तू अपने विचारों को हम पर लादता रहता है और इस तरह हमारे क्षत्रिय-जीवन को तूने धूल में मिला दिया है। जुआ खेला है तूने और बनवास भोगा हमने; प्रतिज्ञायें कीं तूने और नपुंसक बनके रहना पड़ा हमें; मुकुट तो तू पहनेगा और लड़ाई की जोखिमों को हम सहन करें। युधिष्ठिर! भला तेरे कितने पापों को गिनाऊं?"

अर्जुन कहता ही जा रहा था कि श्रीकृष्ण ने बीच में ही उसे रोक दिया—"अर्जुन! बस; अब बहुत होगया। युधिष्ठिर का उचित से ज्यादा वध होगया। उठ; अब हम चलें।" यह कह कर श्रीकृष्ण उठ खड़े हुए।

लेकिन अर्जुन नहीं उठा।

"अर्जुन! चल। सब हमारी राह देखते होंगे।" श्रीकृष्ण बोले।

लेकिन सुनता कौन? अर्जुन के कान तो उसके अन्तर की गहराई में गहरे उतर गये थे। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के कन्धे को थपथपाया; लेकिन अर्जुन ने उनके सामने देखा नहीं। उसकी आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गई और कुछ देर में तो उसकी हिचकी बंध गई।

"अर्जुन, सखा अर्जुन! यह क्या कर रहा है?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"सखा श्रीकृष्ण! मुझे तो मर ही जाना चाहिए। धर्मराज युधिष्ठिर को मैंने जो-कुछ कहा, उसका मुझे पछतावा हो रहा है। क्या करूं? कहां जाऊं? मौत ही इसका एक रास्ता दिखाई देता है।" अर्जुन सिसकता हुआ बोला।

"अर्जुन ! यह पागलों जैसी बातें क्यों करते हो ? 'खुद मरूं या दूसरे को मारूं' इसके सिवा दूसरी बात जीभ से नहीं निकलती क्या ?" श्रीकृष्ण ने पूछा ।

"श्रीकृष्ण ! अब आप जाइए । एक बार आपका कहना मना लिया।" अर्जुन चिढ़कर बोला ।

"श्रीकृष्ण ! अब हम लोगों का क्या होने वाला है, यह मुझे कुछ भी समझ में नही आता ।" युधिष्ठिर बोले ।

"युधिष्ठिर ! घबराइए नहीं ।" श्रीकृष्ण बोले, "अर्जुन ! तुझे पश्चात्ताप करने की जरूरत नहीं। तेरे हृदय की गहराई में जो थोड़ी-बहुत बातें तूने दबा रक्खी होंगी वे आज बाहर निकल आईं, इसमें प्रायश्चित्त किस बात का ? भीम के जब मन में आता है तब बड़–बड़ करके अपने जी का गुबार निकाल देता है । पर तू ज्यादा गम्भीर है, इसलिए युधिष्ठिर के बुरा मानने का खयाल कर तू बात को दबा जाता है ।"

"तो भी मुझे प्रायश्चित्त करना ही है । मुझे खुद ही अपना वध करना है ।" अर्जुन बोला ।

"सखा ! जैसे पहले रास्ता निकाला वैसे ही इसका भी रास्ता निकल सकता है । जिस तरह से तूने अपने मुंह से युधिष्ठिर का वध किया, उसी तरह अपने ही मुंह अपना गुणगान करे तो वह तेरा वध हो जायगा ।" श्रीकृष्ण बोले ।

अर्जुन एकदम हर्ष के आवेश में आकर अपने आप अपनी तारीफ करने लगा, और आज तक उसने जो–जो पराक्रम किये थे उन सबका अतिशयोक्ति के साथ वर्णन शुरू किया । यह सारा वर्णन करते समय उसको रोमांच हो आया । उसके मुंह पर हर्ष था, उसकी आंखों में गर्व था, और उसके सारे शरीर में एक प्रकार का जोश था ।

"अर्जुन ! बस, अब चलो । सब हमारी राह देखते होंगे ।" श्रीकृष्ण फिर एक बार बोले ।

अर्जुन तुरन्त खड़ा हुआ और युधिष्ठिर की गोदी में सिर रखकर बोला, "महाराज युधिष्ठिर ! मुझे माफ कीजिये ।"

"भाई अर्जुन ! क्षमा तो कौन किसको करे ? ऐसे महायुद्धों में— ऐसे दिखाई देने वाले नर-संहारों में—जैसे जगत् की शुद्धि समाई है उसी प्रकार ऐसे ऐसे प्रसंगो में हमारी भी आत्मशुद्धि क्यों न हो ?" युधिष्ठिर बोले ।

"भाई साहब ! आज मैं कर्ण को जरूर मारूंगा । मेरी यह प्रतिज्ञा सत्य ही समझिए । धर्मराज ! मुझे आशीर्वाद दीजिए ।" अर्जुन बोला ।

"अर्जुन ! सुख से जा । तुझे मेरे अनेक आशीर्वाद हैं । कर्ण को मारकर जल्दी ही आना ।" युधिष्ठिर ने अर्जुन का सिर सूँघा ।

अर्जुन और श्रीकृष्ण रथ में बैठकर सीधे रण-क्षेत्र को गये ।

: ११ :

शतरंज के मोहरे सभी एकसे

युद्ध के सत्रहवें दिन सूर्यास्त होने से पहले कर्ण के रथ का पहिया पृथ्वी में धँसने लगा और परशुराम के श्राप से उसकी अस्त्रविद्या भी उसे छोड़कर चली गई । अपने एक हाथ से रथ के पहिये को पृथ्वी से बाहर निकालता हुआ और दूसरे हाथ से गांडीव-धारी अर्जुन से टक्कर लेता हुआ महारथी कर्ण अंत में मारा गया और अर्जुन तथा श्रीकृष्ण ने कर्ण के धराशायी होने का समाचार युधिष्ठिर को सुनाया ।

अठारहवें दिन शल्य सेनापति हुए और दिन समाप्त होते होते महाराज युधिष्ठिर के हाथों युद्ध में मारे गये । उसके बाद महाराज दुर्योधन तालाब में जाकर छिपे और बाद में वहीं भीमसेन के हाथों गदा-युद्ध में मारे गये ।

इस प्रकार अठारह दिन का महाभारत-युद्ध समाप्त हुआ और युद्ध के अन्त में पाण्डव विजयी हुए । दुर्योधन की मृत्यु के बाद पाण्डव निस्तेज और अनाथ कौरव-सेना की छावनी में दाखिल हुए ।

छावनी के दरवाजे पर आकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ खड़ा किया और कहा, "अर्जुन ! तू रथपति है और मैं तेरा सारथी हूँ, इसलिए शिष्टाचार की खातिर रोज़ मैं पहले उतरता था और बाद में तू उतरता था। लेकिन आज रथ पर से तू पहले उतर, अपना गाण्डीव और तरकस भी उतारले। मैं बाद में उतरूँगा। इस बारे में मुझसे कुछ पूछने की जरूरत नहीं है।"

श्रीकृष्ण के कहते ही गाण्डीव और तरकस लेकर अर्जुन रथ से उतर गया और उसके बाद श्रीकृष्ण उतरे। श्रीकृष्ण के उतरते ही सारा रथ जल उठा।

अर्जुन और उसके भाई रथ को जलते देख बड़े चकित हुए। तब श्रीकृष्ण ने कहा, "अर्जुन ! भीष्म और द्रोण के दिव्यास्त्रों से यह रथ अदर ही अंदर पहले ही से जल रहा था, लेकिन मैंने अपनी माया से इसे टिका रक्खा था।"

"श्रीकृष्ण ! यह रथ तो वरुण का था न ?" अर्जुन ने पूछा।

"हाँ, वरुण का था और वरुण के पास ही जायगा। महाराज युधिष्ठिर ! आपको मालूम होगा कि ईश्वरीय संकेत की सिद्धि के लिए अर्जुन को वरुण का यह रथ मिला था। आज आपकी विजय होकर ईश्वरीय संकेत सिद्ध हुआ, इसलिए अर्जुन का अवतार-कृत्य भी पूरा हो गया।" श्रीकृष्ण बोले।

"महाराज श्रीकृष्ण ! यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।" युधिष्ठिर बोले।

"युधिष्ठिर ! आप तो धर्मतत्त्वों के जाननेवाले हैं, इसलिए यह तो जानते ही होंगे कि जगत् में इसके पहले भी ऐसे अनेक महाभारत युद्ध हुए हैं और अर्जुन जैसे अनेक अवतारी पुरुषों ने विजय प्राप्त की है। जबतक यह सृष्टि चलेगी तबतक इसी प्रकार दुर्योधन उत्पन्न होते रहेंगे और ऐसे दुर्योधनों की जांघ चीरकर उनके सिर में लात मारनेवाले भी

उत्पन्न होते ही रहेंगे। आज यह काम अर्जुन और भीमसेन ने किया है, भूतकाल में दूसरे भीम और अर्जुन थे, भविष्य में नये भीम और अर्जुन पैदा होंगे। इन सब अर्जुनों को अपने कार्य के लिए दिव्य अस्त्रों की जरूरत होती है और सनातन ऋषि वरुण ऐसे अधिकारी पुरुषों की इस जरूरत को पूरा करते हैं। आज अर्जुन का यह रथ जल गया, इससे यही समझना चाहिए कि जिस काम के लिए अर्जुन का अवतार हुआ था वह अब पूरा हो गया है।"

"महाराज! अबतक भला यह रथ क्यों नहीं जला था?" युधिष्ठिर ने कहा।

"युधिष्ठिर! युद्ध शुरू होने से पहले आपने मुझे कहा था कि इस अर्जुन का हाथ मैं तुम्हें सौंपता हूं। इसलिए मैंने अपने प्रभाव से अब-तक अर्जुन को बचाया है। पाण्डवो! आज हम कौरवों की इस निराधार छावनी में प्रवेश कर रहे हैं। आप यह अभिमान अपने मन में कभी न रक्खें कि आपने कौरवों को धर्मयुद्ध से ही जीता है। यह आप निश्चित् समझें कि खुद मैंने भी अधर्म में जहां-जहां मदद की है उस सबका इस देह को भी फल भोगना पड़ेगा। इस दुनिया में कितनी बार जहर से ही जहर का नाश होते देखा गया है। उसी प्रकार इस युद्ध में भी कई बार हुआ है। आज तो अब आप विजयी हुए हैं। इस विजय का अच्छी तरह भोग करो। कुछ समय के बाद जब सब शांति होगी तब आपको अपने आप मालूम हो जायगा कि इस विजय रूपी सागर में कितना स्वच्छ जल था और कितना कचरा था।" श्रीकृष्ण ने समझाया।

"महाराज श्रीकृष्ण! हमें इस युद्ध में जो विजय मिली है वह तो आपकी सहायता से ही मिली है। इस विजय में मैं तो अर्जुन का भी कोई श्रेय नहीं मानता। आप अगर न होते तो, भीष्म ने दो बार अर्जुन को जब परेशानी में डाल दिया था तब, कौन हमारी सहायता करता? आप न होते तो शिखंडी को सामने रखकर भीष्म का संहार करने की प्रेरणा कौन करता? आप न होते तो द्रोण के हाथ में से शस्त्र नीचे

रखने की युक्ति कौन सुझाता ? आप न होते तो हम दोनों को आत्म-हत्या करने से कौन रोकता ? आप न होते तो कर्ण के बाण पर बैठे हुए सर्प से अर्जुन की रक्षा कौन करता ? आप न होते तो दुर्योधन की जांघ में गदा मारने की किसे सूझती ? आप न होते तो इस रथ पर से अर्जुन को नीचे कौन उतारता ? ये बातें तो इन अठारह दिनों के बड़े-बड़े प्रसंगों की हैं। बाकी तो हमारे सारे जीवन के छोटे-मोटे प्रसंगों पर, श्रीकृष्ण, आप न होते तो हम तो जी भी नहीं सकते थे। इसलिए, हे केशव ! मैं तो आपको ही इस विजय का सारा श्रेय देता हूं।" युधिष्ठिर ने अत्यन्त आदरपूर्वक कहा और श्रीकृष्ण के पैरों में पड़ गये।

"महाराज युधिष्ठिर ! पैरों में पड़ने का पात्र तो मैं नहीं हूं। आप अर्जुन के बड़े भाई हैं इसलिए मेरे भी बड़े भाई हैं। यह बतलाइए, कि अब मेरा और कोई काम है ?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"श्रीकृष्ण ! आप ही कर सकें ऐसा एक काम और बाकी रह गया है। इस युद्ध के सब समाचार हस्तिनापुर पहुंच गये हैं। यह आज तो नहीं मालूम हो सकता कि इस युद्ध में हमने धर्माचरण किया या अधर्माचरण। लेकिन महासती गांधारी युद्ध के समाचार सुनकर अत्यन्त दुःखी होंगी और अपने पुत्रों का नाश हो जाने के कारण उनका क्रोध करना भी स्वाभाविक ही है। पर गान्धारी का क्रोध तो हमारे लिए मानों साक्षात् मृत्यु ही है। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप हस्तिनापुर जाकर जैसे भी हो गांधारी को शांत कीजिए, नहीं तो वह सती अगर भीम या अर्जुन को शाप दे देगी तो हमारी इस विजय के रंग में भंग पड़ जायगा। महाराज ! यह कार्य आपके सिवा और किसी से नहीं होगा। इसलिए आप हस्तिनापुर जाकर गांधारी को शांत कीजिये।

युधिष्ठिर की यह बात सुनकर श्रीकृष्ण हस्तिनापुर जाने को तैयार हुए और पाण्डव इस विजय का जगत् के कल्याण के लिए अब कैसा और किस प्रकार का उपयोग करें, इसका विचार करने लगे।

+ + +

पांचों पाण्डव और सती द्रौपदी हिमालय की ओर चले। एक कुत्ता भी ठेठ हस्तिनापुर से उनके पीछे-पीछे चला आ रहा था।

रास्ते में एक बड़ा-सा तालाब आया। उसके किनारे एक आदमी खड़ा था। ज्यों ही पाण्डव तालाब के पास से गुजरे, उसने कहा—"अर्जुन ! मुझे पहचाना ?"

"आप कौन हैं ?" अर्जुन ने पूछा।

"मैं अग्नि हूं।"

"इस समय यहां क्यों खड़े हैं ? अब खाण्डव-वन में नहीं रहते ?" अर्जुन ने पूछा।

"आपके खाण्डव-वन को जला देने के बाद उन सर्प लोगों ने मुझे आराम से राज्य तो करने ही नहीं दिया। सर्प लोगों के अन्दर तक्षक आदि जो अराजक युवक हैं, वे किसी को शान्ति से रहने दें, ऐसे नहीं हैं। मैंने आपको जब अपनी मदद के लिए बुलाया तभी मुझे यह लगता तो था कि इनको जला डालना इनपर राज्य करने का सच्चा मार्ग नहीं है। लेकिन यह बात मेरे मन में अच्छी तरह जमी नहीं थी, इसलिए खाण्डव वन को जलाकर तहस-नहस कर डाला। पर आज उन लोगों ने मुझे खाण्डव वन में से निकाल दिया है और समय बीतने पर ये लोग आपके वंश से भी अपना बदला लें तो कोई ताज्जुब की बात न होगी।" अग्नि बोला।

"अग्निदेव ! आपने खाण्डब-वन को जलाकर उसका त्याग किया और हम हस्तिनापुर को प्राप्त करके उसका त्याग कर रहे हैं।" यह कहकर अर्जुन आगे चलने लगा।

"अर्जुन !" अग्निदेव ने आवाज दी, "जाते कहां हो ? गाण्डीव और ये दो तरकस वरुण को दिये बगैर कहां चले ? गांण्डीव के जड़े हुए रत्नों पर मन ललचा गया है क्या ?"

"लोभ तो कोई है नहीं। यही मन में था कि इनको भी अगर साथ

में रक्खा तो क्या हर्ज है ?" अर्जुन ने जवाब दिया, और गाण्डीव तथा तरकस अग्नि के आगे रख दिये।

"हर्ज तो है। तुम्हारा जन्म जिस काम के लिए हुआ था वह पूरा होगया, इसलिए इनका तुम्हारे पास रहना न रहना एक समान है। यही गाण्डीव आज तुम्हारे हाथ में गांडीव का काम नहीं देगा। तुमने यह नहीं देखा कि भीष्म और द्रोण जैसे महारथियों के प्राण लेनेवाला यह गाडीव श्रीकृष्ण की स्त्रियो को लूटने वाले डाकुओं के सामने साधारण लकड़ी के समान होगया था ? अर्जुन ! मनुष्यों के भी दिन होते हैं। तुम्हारा एक दिन था; आज नहीं है। एक दिन तुमने हजारों शत्रुओं को एक सपाटे में जमीन पर सुला दिया था; पर एक दिन तुम ही बभ्रुवाहन के हाथ से रथ में गिर पड़े थे। अर्जुन ! वक्त-वक्त का फेर है। इसलिए शोक मत करो। मनुष्य अगर यह मानना छोड़ दे कि 'मैं बलवान् हूं, और काल भगवान की प्रेरणा से जो कुछ करे उसमें अभिमान न माने तो सब ठीक है। पांडवो ! जाओ ; काल भगवान तुम्हें कल्याण के मार्ग पर ले जांय !"

यह कहकर अग्निदेव ने सबको आशीर्वाद दिया और गांडीव तथा दोनों तरकसों को लेकर उस सरोवर में फेंक दिया। तुरन्त ही सरोवर में से एक हाथ ऊपर आया और गांडीव तथा तरकस को लेकर अन्दर चला गया।

अर्जुन मन में गुनगुनाया—"यह काल भगवान का हाथ तो नहीं था ?"

पाँचों पाण्डव और द्रौपदी आगे चले। रास्ते में नकुल गिरा, सहदेव गिरा, देवी पांचाली गिरी और बाद में अर्जुन भी गिर पड़ा।

"भीमसेन ! मेरे सिर में चक्कर आ रहे हैं ?" यह कहकर अर्जुन बैठ गया।

"भाई अर्जुन ! क्यों, क्या हो रहा है ?" भीमसेन ने पूछा।

"क्या हो रहा है, यह तो मालूम नहीं होता। लेकिन जी बहुत

घबरा रहा है और आँखों के सामने अँधेरा-सा छा रहा है।" अर्जुन बोला।

"युधिष्ठिर! हम लोग आज यहां ठहर जाय तो कैसा?" भीम ने कहा।

"भीमसेन! नहीं, यह नहीं हो सकता। यह तो मेरे विश्राम की जगह है। प्यारे भीमसेन! देखो पांचाली जहां चली गई, वहीं अब मैं भी चला समझो।" अर्जुन बोला।

"अर्जुन! तो तू भी जायगा? हे भगवान्, यह क्या हो रहा है?" भीम ने हिम्मत हारते हुए कहा।

श्रीकृष्ण ने मुझसे कहा था और अग्नि ने भी मुझे पहले ही से सावधान किया था कि तेरा जीवन-कार्य पूरा हो गया। पर मैं यह पूरी तरह समझा नहीं। महाराज युधिष्ठिर! अब यह समझ मे आ रहा है कि अपना जीवन-कार्य पूरा होने के बाद भी मनुष्य ममता का मारा संसार-सागर में इधर-उधर हाथ-पैर मारता रहता है, और काल भगवान् जबतक उसके शप का नाश नहीं कर डालते तबतक वह इस सागर में तैरने का प्रयत्न करता ही रहता है। इसका एक उदाहरण मैं खुद ही हूँ। भीमसेन! जिनके प्रताप से हम लोग इस युद्ध में पार उतरे वह श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् थे। उनका अपना जीवन-कार्य पूरा होते ही उन्होंने उसी तरह अपनी देह का त्याग कर दिया जैसे सर्प अपनी केंचुल को उतार डालता है। न उनको द्वारिका रोक सकी, न सोलह हजार स्त्रियां, न पुत्र, न चक्र और गदा, और न हम सब ही। मुझे श्रीकृष्ण 'सखा' कहते थे। इसमें उनका ही बड़प्पन था। परन्तु मैं पामर समझा नहीं, इसलिए मेरा अभिमान बढ़ा—इतना बढ़ा जिसकी कोई हद नहीं! श्रीकृष्ण गये और चोरों ने मुझे लूटा, तब मेरी आँखे पहली बार खुलीं। और उसके बाद तो बहुत बार खुलतीं और बन्द होती रही हैं। भीमसेन इस अभिमान ने मेरा नाश किया है, यही समझना। महाराज युधिष्ठिर! अर्जुन का अन्तिम प्रणाम। भीमसेन! इस अभिमान की गठरी आज मेरे हृदय पर कितनी भारी लगती होगी, उसका खयाल तुम्हे नहीं आ

सकता। मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए मनुष्य के हृदय पर ऐसा ही एक प्रकार का बोझा मालूम होता होगा। श्रीकृष्ण ! अब एक बार और मेरे सारथी बनोगे ? अब मैं आपको पहचान गया, इसलिए भूल नहीं सकता। आज तक तो मैं शिष्टाचार की भाषा में कहता था कि, 'यह विजय आपने ही दिलाई है।' पर मनुष्य-मात्र कितना निर्बल है, इसका सच्चा अनुभव तो आज हो रहा है, इसलिए मैं जीऊँगा, और यही मानकर जीऊँगा कि विजय आपकी ही हुई है।

"लेकिन, यह सब व्यर्थ है। भीमसेन ! मैं तो चला। एक बार मेरे सारे अभिमान का हिसाब चुकता कर लेने दो। यह भीष्म पितामह खड़े हैं; यह जयद्रथ अपना हिसाब लेकर खड़े हैं; द्रोणाचार्य तो अश्वत्थामा का खाता भी अपने हिसाब में लिख रहे हैं; और कर्ण—सूतपुत्र !...... नहीं-नहीं, कुन्ती-पुत्र मेरा बड़ा भाई कर्ण भी तो हिसाब लेकर खड़ा-खड़ा हंस रहा है। इन सबके हिसाबों में मेरा भी खाता है और श्रीकृष्ण का भी खाता है। खड़े-खड़े सब मुझे इशारे से कह रहे हैं कि श्रीकृष्ण का खाता उन सबने साफ कर दिया है, लेकिन मेरा खाता तो अभी बाकी है। पितामह, भाई कर्ण, जयद्रथ, गुरु द्रोण ! आप सब जब मुझे अपने कर्ज से मुक्ति देंगे तभी मुझे शांति मिलेगी।"

"भाई अर्जुन ! जरा शान्त तो रह। श्रीकृष्ण को याद कर तो जरा शान्ति मिलेगी।" युधिष्ठिर बोले।

"बड़ी मेहनत करता हूं, लेकिन वह तो दूर-ही-दूर छिपते जा रहे हैं। और मेरे ये सब लेनदार मुझे शान्ति से बैठने दें तब न। महाराज युधिष्ठिर ! प्रणाम। जिस विजय के लिए हम सब जिये उसका जब सार निकालता हूँ तब दिवाला ही दिखाई देता है। भाई साहब ! यह अक्ल आज बहुत देर से आई। इस समय तो विजय के खून से सने हुए इन हाथों में अभी भी बदबू आ रही है। स्वर्ग-गंगा में धोने से यह बदबू चली जाय तो चली जाय, नहीं तो यह बदबू लेकर ही शायद अगला जन्म लेना पड़े। भाई भीम ! भाई साहब युधिष्ठिर ! मुझे आज्ञा दो।

पितामह ! आपका यह पुत्र भी आया । कर्ण ! अब अगर तुम्हारा रथ पृथ्वी में धंसेगा तो मैं उस पहिये को बाहर निकालूंगा ।"

महाराज पाण्डु के पुत्र, कुन्ती के बहादुर बेटे, इन्द्र के पुत्र, द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य, पाञ्चाली के प्राण, श्रीकृष्ण के सखा, कर्ण के कट्टर शत्रु, अभिमन्यु के पिता, सुभद्रा के पति, गाण्डीव धारण करने वाले, सारी पाण्डव-सेना को युद्ध में पार लगाने वाले और युधिष्ठिर के गले में विजयमाला पहनाने वाले अर्जुन ने इसी प्रकार बोलते-बोलते अपने प्राण त्याग दिये !

॥ समाप्त ॥